अनुवाद : वसुन्धरा

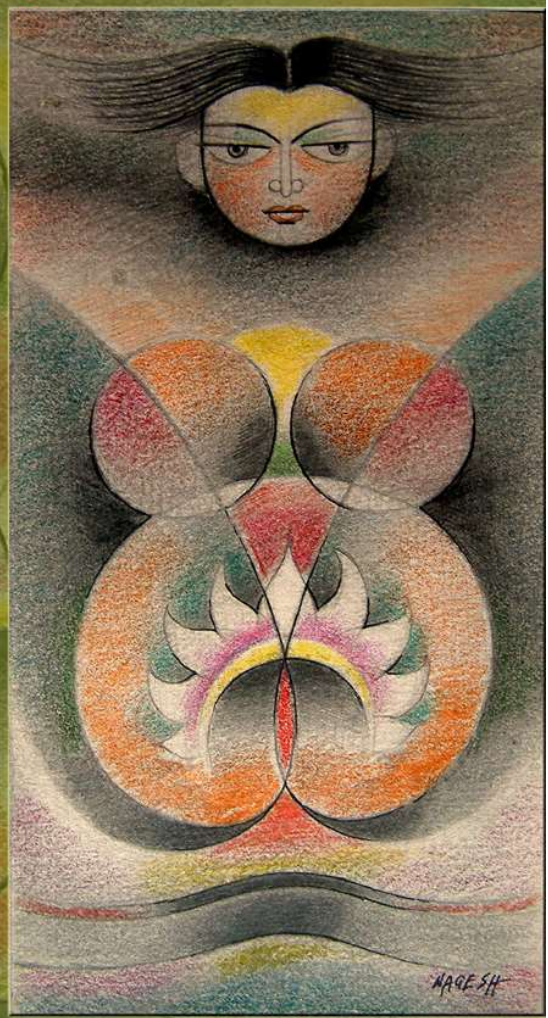

एक सावित्री की मौत

डॉ. अमरेन्द्र

एक सावित्री की मौत

एक सावित्री की मौत

कथाकार

डॉ. अमरेन्द्र

हिन्दी अनुवाद

वसुन्धरा

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : ९७८-८१-८७८५५-६३-७

प्रथम संस्करण
२०१७

सर्वाधिकार ©
लेखिकाधीन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)-८४२ ००१
फोन : ०९३४२७९९५७, ०९९०५२९२८०१
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www. samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर-२७, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-९२
फोन : ०९९११४७८६६८

शब्द-संयोजन
सतीश कुमार

आवरण-चित्र
नागेश मिश्र

मुद्रक
बी.के. ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
१५०.०० (एक सौ पचास रुपये)

Ek Savitri Ki Maut By Dr. Amrendra
Hindi Translation : Basundhara Rs. 150/-

अपने बचपन को
जो अभी भी रुपसा के चानन नदी के किनारे
खेलता-कूदता होगा ।

—अमरेन्द्र

कहानी-क्रम

१. पाकड़ पर प्रेत	९
२. बरकटुवा धूप	१६
३. वापसी	२३
४. चन्दन विष व्यापत नहीं	३२
५. माँ	४०
६. कहानी की कोख	४९
७. जहाँ न अपना कोई	५३
८. धरमदास की कपली गाय	६१
९. एक सावित्री की मौत	७२
१०. रैन भये चहुँ दिस	७८
११. पगलवा मर गया	८६
१२. सुख	९१
१३. भय	९८
१४. रहस्य	१००
१५. आधी रात की सुबह	१०१

मेरी बातें

पिताजी की अंगिका कहानियों के हिन्दी अनुवाद की प्रेरणा तब और भी मजबूत बनी, जब मेरे ही द्वारा पिताजी की एक अंगिका कहानी 'माय' का हिन्दी अनुवाद पढ़कर हिन्दी के ही प्रख्यात कथाकार अमरकांत ने इसकी प्रशंसा की । इसके बाद तो मैंने निर्णय ही ले लिया कि 'पाकड़ पर प्रेत' की सारी अंगिका कहानियों का हिन्दी अनुवाद करुंगी, और यह हो भी गया । यह हो गया, इसलिए कि कहानियों की रोचकता ने मुझसे ऐसा करवा लिया । संग्रह के अंत में ऐसी भी एक कहानी है, जो 'पाकड़ पर प्रेत' में नहीं है और जो पिताजी द्वारा अनुदित होकर पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुई थी । जो हो, अंगिका कहानियों का यह हिन्दी अनुवाद अब मुझे इसकी भी अनुभूति करा रहा है कि पितृऋण से मुक्त होने की दिशा में यह एक कदम बढ़ाना भी है ।

—वसुन्धरा

होली, १३ मार्च २०१७

सम्पर्क : मकान नं. ३०४/२२,
शक्ति नगर, गुड़गांव
(हरियाणा) १२२००१

पाकड़ पर प्रेत

रात उतरने में अभी बहुत देर थी । जोगबारी क्या आज से ही रह रहा है कचहरी हाता के इस दुकान में । जिस दिन से शहर में पैर रखा है, उसी दिन से। लेकिन कभी भी उसने खुद को ऐसे अनभुआर की तरह नहीं पाया था, न इस तरह भयभीत, जिस तरह आज खुद को महसूस कर रहा था । उसकी चाय, पान की दुकान ठीक वट वृक्ष के नीचे थी, जो उसके लिए घर का काम भी करती, लेकिन आज यही घर उसके लिए राक्षस के मुख समान लग रहा था । पेड़ की किसी टहनी पर जैसे ही कोई चिड़िया पंख फड़फड़ाती और एक भी पत्ता सरसराता, तो चौंक पड़ता वह। उसके मन में शंका की आंधी-तूफान चल रहा था, ''मुझे भी खूब मालूम है कि आज दस साल बाद रमखेलिया की याद विसेसर को कैसे आई है । आज तक कहाँ गुम थी उसकी बुद्धि ? कभी भी याद तो नहीं किया । मुझे भी खूब मालूम है कि अचानक ही उसका प्रेम क्यूँ जागा है ।'' जोगबारी ने मन-ही-मन सोचा था और बायीं तलहथी पर दायें हाथ का एक घूसा जमाते हुए कहा था—''विसेसरा, बस यही समझो कि तुम मेरे भाई हो, सौतेले ही क्यूं न, आखिर हो तो भाई ही । यदि भाई न होते, तो तुम भी जोगबारी का गुस्सा देख ही लेते । कोर्ट-कचहरी जो होता, देखा जाता । और क्या, कोर्ट-कचहरी के दांव-पेंच तुम मुझसे ज्यादा जानते हो । अरे, मेरी जिन्दगी ही कोर्ट-कचहरी के मुंशी वकीलों के बीच गुजरी है । मुझे इसका ज्ञान हो न हो कि चाय-पान में कितना चीनी-पत्ती और चूना-खैर लगता है, लेकिन कानून कैसे चलता है वह तो मैं जानता ही हूँ न । इस चाय-पान, चीनी-चूना का ज्ञान तो रमखेलिया को है, जिसको तुम उड़ाना चाहते हो, किन्तु जान लो विसेसर तुम्हारी यह मंशा जिन्दगी भर पूरी नहीं होनेवाली । हाँ....यह तुम्हारे लिए लगोर होगा, मेरे लिए मेरा बेटा है ।'' सोचते-सोचते अनायास ही उसका ध्यान रमखेलिया की ओर गया, जो दुकान के एक किनारे में बेंच बिछा कर चित्त लेट गया था, छाती पर दोनों हाथ रखे हुए, बिल्कुल गहरी नींद में ।

जोगबारी भी उसकी बगल में ही सोता है, दुकान को समेट उसी तीन बेंच को जोड़कर बिल्कुल चौंकी सा बना लिया और उसी पर सो रहा ।

वह धीरे-धीरे बेंच से उठा और रमखेलिया के दोनों हाथों को छाती से हटा कर नीचे कर दिया, ''कहतें हैं छाती पर हाथ रख कर सोने से बुरे सपने आते हैं।'' उसने माँ से सुनी बातों को याद किया था ।

छाती पर हाथ रखकर सोने से रमखेलिया को तो सपना क्या आयेगा, हाँ, जोगबारी को आजकल खराब सपने जरूर आ रहे हैं, जिस दिन से उसे अशुभ की शंका हुई है और इसी सपने के कारण वह रात-रात भर भरसक जगा ही रह जाता है । जगा ही रहता है तो वैसे ही नहीं; आज की ही तो बात है, उसने विसेसर को सरजुग की पान दुकान पर देखा था । पान लेने के बाद भी वह घंटा भर उसी दुकान पर खड़ा रह गया था । चबा तो रहा था पान, लेकिन उसकी नजरें रमखेलिया की ओर ही थीं । वह समझ रहा था कि मैंने उसे नहीं देखा, लेकिन उसे क्या मालूम, जिस दिन से उसकी नीयत का पता मुझे चला है, मैं अपने अजनबी ग्राहकों पर भी नजर रखता हूँ । आजकल तो आदमी को दिन-दहाड़े उड़ा लिया जाता है, रमखेलिया की उम्र ही क्या हुई है अभी, बारह वर्ष का ही तो होता होगा ।''

पता नहीं उसके मन में क्या आया था, वह धीरे-धीरे सरयुग की दुकान की ओर बढ़ा, वहीं से इधर-उधर सारी दुकानों के आगे-पीछे घूर-घूर कर देखा था और फिर निश्चिन्त होकर अपनी बेंच तक लौट आया था । उसने सोचा—''रात बीतने में अभी भी आधा पहर बाकी है, क्यों न वो एक झपकी मार ले । फिर तो सुबह के उजाले से पहले जो आँख खुलेगी तो दस बजे रात में ही फुर्सत ....इसमें कहीं भी कोई शंका की बात नहीं ।'' और केहुनी के बल लेटते हुए उसने अपनी टांगे बेंच पर चढ़ा ली थीं । नींद लाने के ख्याल से उसने आँखें बन्द तो कर लीं, लेकिन आज उसे किसी भी तरह नींद नहीं आ रही थी । रह-रह कर विसेसर का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम जाता था । और उसका चेहरा याद कर वह फिर बुदबुदाया था—''कैसा छटा बदमाश लगने लगा है यह । आज से दस साल पहले वाले से बिल्कुल अलग । तब भी कड़ा रुख का तो था ही, नहीं रहता तो सिर्फ माँ-बाबू का ही क्या, पूरे टोला-मुहल्ला का विरोध कर फुलटुस दा की विधवा पत्नी को अपने घर कैसे ले आता । विसेसर ने टोला में हका कर कह दिया था, ''रमखेलिया अब मेरा बच्चा है, और उसकी माँ मेरी पत्नी ।''

उसने पीछे के दिनों को याद किया था, ''लेकिन साल भी पूरा ना हुआ होगा, घर में सिर्फ गाली-गलौज मचने लगा । विसेसर रमखेलिया की माँ को उसके पति का नाम लेकर क्या-क्या गाली नहीं देता, और रमखेलिया, रमखेलिया तो बस

टुक-टुक देखता रहता । भूखा-प्यासा घूमता रहता । जब माँ को ही दाना नसीब ना था, तो बेटे को कहाँ से होता । टोला-पड़ोस से तो पहले से ही दुश्मनी थी, इस शादी को लेकर । फिर विसेसर कौन-सा कमाऊ था । दिन भर इधर-उधर से झाड़ कर लाता तो घर चलता....विसेसर ने भले ही घर से आँखें मूंद ली थीं, पर और सब कैसे मूंदते । एक घर के दो द्वार होने से क्या हो जाता है । रोना-सिसकना दीवार-द्वार थोड़े ही जानता है । मेरा भी जी फट कर रह गया था ।

''लेकिन क्या सचमुच यही बात थी ?'' जोगबारी ने अपने दिमाग पर जोर डाला था और तुरन्त ही बोल पड़ा था, ''नहीं, नहीं, यह तो नहीं था । बात कुछ और थी । जिस दिन मैंने रमखेलिया को आंगन में खेलते देखा था, उसी दिन मैं एकदम से अवाक रह गया । उसे गौर से देखा था—एकदम मेरे बेटे का नाक-नक्श लिया है । सोचा था, आज अगर वह जिन्दा होता, तो ऐसा ही होता, बिल्कुल ऐसा ही ।''

कैसे पागल-सा हो गया था जोगबारी—अपनी गोद में अपना पहला बच्चा पाकर । सोरी घर भी नहीं समझता था वह और दिन-रात सोरी घर में ही घुसा रहता। आस-पड़ोसी की रिश्ते में भाभी लगने वाली औरतें लाज भी लगातीं लेकिन उसपर कोई असर नहीं । वह सोचने लगा—कितने-कितने सपने देखे थे उसने, अपनी पत्नी से भी कहीं ज्यादा.....लेकिन छः महीने भर भी नहीं टिका, खुद नसाया तो माँ को भी साथ-साथ ले गया । चिल्ला-चिल्ला कर जान दे दी थी । एकदम से छोड़ दिया था अन्न-जल को.....पता नहीं, रमखेलिया को देखते ही क्यूँ मुझे लगा था कि मेरा बेटा ही फिर जन्म लेकर आया है, और उस दिन एक बात पर रमखेलिया माँ की गोद से उसे लेकर मैं यहाँ चला आया था । उस दिन से लेकर आज तक कोई भी खोज-खबर नहीं ली। विसेसर तो उस समय इस बात से खुश ही हुआ था.... यहाँ आने के ठीक साल भर के बाद ही गाँव के पुराने मित्र मंगल से मेरी मुलाकात हुई थी, उसी ने बात-बात में बताया था कि रमेखलिया को इस तरह लाने पर विसेसर ने कहा था—''अच्छा हुआ जो विपत्ति उठा कर ले गया, अच्छा होता कि उसकी माँ को भी उठा ले जाता, जान का जंजाल छूटता, साला खुद का पेट पालना तो मुश्किल, ऊपर से इस औरत के लिए अन्न जुटाना कितना मुश्किल है, मैं ही जानता हूँ । वह तो जवानी के जोश में मैं इस औरत को उठा ले आया, नहीं लाता तो एक पेट साँढ़ की तरह डकरता-पालता रहता...''

जोगबारी मन-ही-मन भुनभुनाया था, 'तो खबर क्यों नहीं किया, तुम्हारी लगोर औरत को उठाने का साहस, तो मुझमें नहीं । यदि रमखेलिया की माँ आते वक्त जरा भी अपना मन दिखाती, तो सारा फैसला उसी समय हो जाता । मैंने तो यही सोच उससे कुछ नहीं कहा था कि पता नहीं वह क्या समझेगा—इस घर के लोग

औरतों को लोटा-थाली समझते हैं, जिसने चाहा वही उठा कर चल दिया । उस समय यह बात अगर मेरे मन में ना आई होती तो विसेसर आज वह मेरे पास होती । दुकान के पीछे खाली जगह तो पड़ी है ही, एक ढाबा लगा देता । उसी में उम्र काट लेती वह । हाँ, अब उम्र ही तो काटनी है । तुम तो उसे उम्र भी काटने ना देते होगे । उस औरत के पति होने का दावा भी करते हो, और उसका पेट भी नहीं पालते... विसेसरा, यदि वह यहाँ होती तो पेट के लिए किसी मर्द का पैर नहीं पकड़ना पड़ता उसे, जान लो । मंगलिया के एक बात से मैं यह जान गया हूँ कि तुम उस बेबस औरत से क्या-क्या करवा रहे हो । क्या समझ रहे हो—सरंग में ग्रहण लगता है तो केवल चांद-सूरज ही जानते हैं, ग्रहण तो बाद में लगता है—दुनिया पहले जान जाती है, और फिर कहीं आग लगे धुआँ तो दूर तक दिखता है ।''

उस दिन बाजार करते हुए हठात् लपटोलिया के डोंगी काका मिल गये थे, तो जोगवारी को गाँव की कहानी सुनाते हुए हँसते-हँसते कहा था, ''अब तुम्हारा भाई तो बहुत मौज मस्ती में है, खाने-पीने की कोई कमी नहीं । पत्नी को महतो बाबू के घर पर नौकरानी का काम मिल गया है, फिर कमी किस बात की होगी । सुना है, अब तो विसेसर ने डांटना-फटकारना भी छोड़ दिया है । महतो बाबू ने डांटने-फटकारने को मना किया है । अब क्या जानूँ, क्या बात है.....'' डोंगी काका की बात याद आते जोगबारी बेचैन हो उठा ।

जोगबारी को मालूम है कि महतो बाबू इलाका भर में कितने दबंग और मातवर आदमी हैं, उनकी इच्छा के विरुद्ध तो पंचायत भी कुछ नहीं बोलती । उसे याद आई—इसी महतो बाबू के घर से दो सौ गज की दूर पर सिकोरिया की बारात जा रही थी । सिकोरिया डोली पर बैठा था । महतो बाबू के सामने से भला सिकोरिया जैसा आदमी डोली पर बैठ कर शादी करने जाय, यह तो बिल्कुल अनकट्ठ बात थी । महतो बाबू ने अपने दो आदमियो को भेजकर डोली लुटवा ली थी और अपने घर के सामने वाले खजूर के पेड़ से सिकोरिया को बांध कर किस तरह पिटवाया था, उसी खजूर पेड़ के खजूरी डाली से । कहा था—मेरी आँखों के सामने से डोली पर चढ़ कर जाने के गौरव का परिणाम क्या होता है, जान लिया ना ।

जोगबारी का समूचा शरीर काँप उठा । जैसे महतो बाबू के आदमी उस के शरीर पर वही खजूर के डंठल बरसाने लगे हों । देखते-ही देखते उसे अपने आप को सिकोरिया की जगह पर बंधा पाया था और सामने में ही महतो बाबू कुर्सी लगवा कर बैठे हुए गुर्रा रहे हैं, ''क्या रे जोगबरिया, पुस्त-दर-पुस्त तुम्हारे बाप-दादा मेरे घर की जोगबारी करते आए और उससे ही घर भर का पेट पालते रहे.....सो कितना अन्न का खून बढ़ गया कि मुझसे ही रार करने पर उतर आए हो...बिना मुझसे पूछे ही,

विसेसर के बेटा को उठा कर चल दिये—सुनसान में बने मन्दिर के देवता की सोनेवाली आँख उखाड़ ली, आंय रे....आँख क्या झुकाये हो; आँख उठा कर इधर ना देखो ।''

और जोगबारी को लगा था कि जब उसने आँख उठायी थी तो वहाँ पर महतो बाबू ही नहीं, उसका भाई विसेसर भी खड़ा था, और विसेसर के बगल में ही उसकी पत्नी । उसे लगा—महतो बाबू की आवाज फिर उठी थी, ''विसुनमा, जरा दो तो फिर से गिन कर बीस छड़ी इसकी देह पर । बच्चा चोरी का केस अभी इसे मालूम नहीं है ।

जोगबारी को जैसे करण्ट लग गया हो । वह बिल्कुल तिलमिला कर उछल पड़ा था । डरी-सहमी आँखों से चारों ओर देखा था । कहीं कुछ ना था । उसे अपने स्वभाव पर गुस्सा हो आया था, लेकिन यह सोच कर कि कहीं यह सब होने वाली घटना के पहले वाला आभास ही तो नहीं है । उसकी माँ कहती थी, यदि कोई बड़ी घटना होने वाली हो, तो मन पहले ही उसका आभास करा देता है । यह बात याद आते ही वह फिर एकदम से सिहर उठा था । यदि विसेसर ने महतो बाबू के बल पर इसे मंगवा लिया, तब क्या होगा । मेरी दुनिया का क्या होगा । रमखेलिया आगे में खेलता-कूदता रहता है तो बेटा ही नहीं, खगड़िया वाली भी आँख के सामने घूमती रहती है । मरने से क्या आदमी की याद भी मर जाती है, फिर मेरे बिना तो यह भी मुरझा कर रह जायेगा । देखा नहीं है क्या...घर जाने के नाम से ही कितना उदास हो जाता है...आज से पाँच साल पहले इसकी माँ आयी थी, इसे लेने ही । कितना मनाने-बोलने के बाद भी यही कहता रह गया, ''मैं बाबू को छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा'' उस क्षण को याद करते जोगबारी की आँखें भर आईं और वह बोल उठा, ''और मैं भी तुम्हें नहीं छोड़ सकता बेटा, तुम किसी के लगोर हो सकते हो, लेकिन मेरे लिए मेरे अपने बेटे ।''

एक क्षण के लिए लगा, जैसे वह बिल्कुल मजबूत हो गया हो । कहीं से कोई डर नहीं कि तभी एक शंका ने उसे उदास कर दिया—मान लेता हूँ कि विसेसर के कहने पर महतो बाबू कुछ ध्यान न भी दें, लेकिन विसेसर की बात में आ कर रमखेलिया की माँ अगर महतो बाबू से कहे, तो क्या होगा ?.....कुछ ठिकाना नहीं, आखिर कितना भी मर्द मारे-पीटे, पति-पत्नी एक समय एक ही हो जाते हैं ।'' जोगबारी ने मन की शंका को जोर देते मन-ही-मन कहा था, ''क्या ठिकाना, विसेसर की बात में आकर रमखेलिया की माँ ने महतो बाबू से कहा हो 'मेरे लड़के को मंगवा दीजिए, मेरा भी सहारा होगा और बचे समय में मालिक का काम भी कर दिया करेगा।' हो-न-हो, महतो बाबू ने भी यह सोचा होगा कि रमखेलिया तो अब

खेती-बाड़ी करने के लायक हो ही गया होगा, क्यों न उसे बुलवा लिया जाय.... लेकिन ज्यादा तो यही बात सच लगती है कि यह चाल विसेसर की है । उसे मालूम हो गया है कि रमखेलिया एकदम चालू-पुरजा हो गया है । गाँव में चाय-पान की दुकान खोल दूंगा तो मेरे बुढ़ापा तक की व्यवस्था हो जायेगी, और यह बात उसने रमखेलिया माँ के सामने रखी होगी, शायद यह भी कहा होगा कि वह जाकर महतो बाबू को कहे—वो जैसे भी हो, रमखेलिया को गाँव बुलवा दें ।.....लेकिन यह नहीं हो सकता ।'' उसने अपनी शंका को बिल्कुल निर्मूल करते हुए खुद को समझाया था, ''यदि ऐसा होता तो वह रमखेलिया को उस समय गोद में देती यह न कहती—आज से आप ही इसके पिता । यह आपकी ही छाया, आपकी ही लाठी ।'' उसने विसेसर की बात एकदम से टाल दी होगी । मार-लात खाकर भी वह नहीं मानी होगी । आखिर वह भी तो यह जानती है कि विपत्ति की घड़ी में मैंने ही इस लगोर को बचाया है....'' जोगबारी ने उसकी तरफ से निश्चिन्त होकर फिर से विसेसर के बारे में सोचा था ''जो हो, यदि विसेसर यहाँ आया था तो और कुछ व्यवस्था उसने जरूर की होगी । हो सकता है कि दो-चार आदमी को इधर-उधर और बिठा रखा हो, और समझाया हो कि सुनसान देखते ही रमखेलिया को उठा लाना है । और यदि मान लो, विसेसर रमखेलिया को गायब करवाने में सफल हो जाता है, तो क्या मैं उसे फिर पाऊँगा ? नहीं, कभी भी नहीं, रोज तो बच्चा गायब करने की बात सुनता हूँ, और फिर महीने-महीने तक सुनता रहता हूँ कि वह नहीं मिला—आखिर मिला तो फलां जंगल में टुकड़े-टुकड़े किये हुए.....''

जोगबारी बिल्कुल पसीना-पसीना हो उठा । उसे लगा कि उसका पैर थरथराने लगे हैं । जैसे खुद के पैर पर उसका कोई अधिकार ही न रह गया हो । पता नहीं क्यों उसे लगा था कि जैसे विसेसर के आदमी इधर-उधर ही कहीं छिपे बैठे हैं । जबकि वह जानता था—यह सब उसका भ्रम मात्र है, यहाँ तो रात भर कचहरी जगी ही रहती है, दो बजे ही चूल्हों में आग पड़ जाती है, और चार बजे सुबह से ही होटलों में खाना बनना शुरू हो जाता है, एक होटल की बात थोड़े ही है, दस-दस होटलों में सवा सौ नौकर-चाकर जमे ही रहते हैं । एक हाँक दो, तो पूरी कचहरी गनगना उठेगी । तब भी न जाने, आज जोगबारी को इन बातों पर कोई विश्वास नहीं हो रहा था । उसे लग रहा था, जैसे सभी ऊँघ रहे हैं, भय में उसकी आँखें वकील तरुण बाबू और मुंशी अशोकी बाबू की बैठकी की ओर गयी, जहाँ पर उन दोनों के उठने के बाद भी कोई-न-कोई बैठे ही रहते थे, आज वहाँ पर कोई न था । जोगबारी का हृदय किसी अनहोनी की आशंका से काँप उठा, ''क्या सचमुच में तो कोई अनहोनी नहीं होने वाली है ।'' लेकिन वह जानता है, पिटपिटया की

बात अलग है, इससे अलग वह पाँच आदमियों को भी अकेले देख सकता है, इस उम्र में भी इतनी ताकत तो है ही । उसने सरंग की ओर देखा—अभी भी उजाला होने का ठिकाना दूर-दूर तक ना था, जबकि बड़ पेड़ पर बैठी चिड़ियाओं ने एक बार हांक दे चुकी थी ।

पहली बार उसे लगा था कि वह आज तक श्मशान का जोगी रहा है, जहाँ लोग आते हैं, अपने संबंध-विच्छेद करने के लिए । और बहुत थकथका कर सोचा था, ''फिर ऐसी जगह के जोगी का ही क्या होगा । अभी भी रात तो काटनी ही है।''

जोगबारी ने अपनी तीनों बेंचों को रमखेलिया के बेंच से सटा लिया और वहीं पर पैर फैला कर बैठ गया । फिर सिरहाने की ओर इतना खिसक आया कि उसका और रमखेलिया का तलवा एक सीधे में आ जाय । उसने अपने गले से लिपटे गमछे को रमखेलिया के एड़ी के नीचे से पार कर दिया उसके दोनों किनारों को एक करते हुए आहिस्ता-आहिस्ता गाँठ लगाई । एक गाँठ नहीं, तीन-तीन गाँठ कस कर, हल्के हाथों से ताकि रमखेलिया की नींद न टूटे, जोगबारी ने एक बार फिर उसे देखा, अभी भी वह गहरी नींद में सो रहा था । दोनों केहुनियों का सहारा लेते वह भी वहीं पर चित्त लेट गया—इस तीनडेरिया पर आँख गड़ाये ।

❐

बदरकटवा धूप

''कुल्हड़िया चुनाव में खड़ा होकर रहेगा....कुल्हड़िया'' अपने नाम को याद करते ही उसका मन एकदम कड़वा हो उठा, ''यह नाम जरूर ही कैथ टोली या बभन टोली या रजपुतानी टोली के लोगों ने रखा होगा । गुअर टोली के चौधरी परिवारों की भी करतूत हो सकती है । यह भी भला कोई नाम हुआ—कुल्हड़िया....ना मेरी बोली कुल्हाड़ी की तरह, ना करतूत, तब भी मैं कुल्हड़िया, और जिसे आँख न कान, उसका दिपुआ नाम । शिवचन्नर के बेटे की सूरत तो सब देखते ही हैं, लेकिन नाम क्या है—सुदर्शन ।'' यह सोचकर ही, अभी-अभी जो वह अपने नाम से कलपित्त जैसा हो गया था, हँस पड़ा, ''बड़े टोलों का ऐसा ही रिवाज रहा है'' उसने मन-ही-मन सोचा था और सामने में रखे मूढ़ी-कचरी के बीच में दायें हाथ की बीचवाली ऊँगली घुसा कर घुमाने लगा था ''इतना-सा मूढ़ी-कचरी से भला क्या होने वाला है'' अजनसिया ने कहा था, ''जान लो कुल्हड़िया, माल से चार गुना ज्यादा चखना रहता है, तभी खाने-पीने में मजा आता है, ठहर, मैं जंगली दा से पाँच रुपये का और कचरी ले आता हूँ ।'' यह कह कर अजनसिया जो गया था तो अभी तक नहीं लौटा । दस मिनट से ज्यादा हो गए होंगे।

''लगता है वह बने-बनाये की जगह ताजा छकवाने लग गया, तब तो आधे घण्टे के बराबर देर समझो । भीड़-भाड़ में ताजा का चक्कर । अजनसिया को समय-कुसमय का कुछ ज्ञान नहीं...ज्ञान रहता तो साधू महतो के सामने यह कहता, ''कुल्हड़िया, इस बार तुम्हें भी इलेक्शन में खड़ा होना है, छो या खो । फैसला होकर रहना है ।'' अजनसिया की बातों पर महतो किस तरह गुस्साया था, और इसके बाद क्या वह चुपचाप बैठा होगा, सारे औजार भिड़ा दिए होंगे । अखाड़े का पुराना पहलवान है, किस दांव-पेंच की जानकारी नहीं है,....बाप रे बाप, उतने बड़े लाग-भाग वाले मिसिर जी, जिसने दिल्ली से उतने बड़े मंत्री को उतार दिया, ई मुर्दघट्टी जैसे गाँव में, उसे तो मात देने में देर ना लगी महतो जी को; तो भला मेरे जैसे इग्गी-दुग्गी

को क्या समझेंगे, लेकिन जो हो, अजनसिया की बातों पर गुस्साये जरूर हैं महतो जी, और गुस्साने का कारण है, वैसे ही नहीं....महतो बाबू की जितनी चलती हो कैथपट्टी और बभन टोली में, कुम्हार टोली, रजक टोली और बेलदारी टोला में, उनकी एक नहीं चलने वाली है, और जो इन तीनों पट्टियों को मिला दिया जाए, तो क्या मजाल है कि चुनाव का फैसला महतो जी के पक्ष में हो जाएगा'' यह सोच कर कुल्हड़िया की आँखों में चमक आ गई थी । वह हठात ही गदगद हो गया और अजनसिया का ख्याल किए बिना ही एक मुट्ठी चखना अपना मुँह फाड़ते उसमें रख लिया । मुँह में चखना रखते ही उसने जाँघ की बगल में रखे महुए की बोतल की ओर देखा, लेकिन फिर आँखें फेर लीं । सोचा, अजनसिया एक भी बूँद कम देखेगा, तो कचकच करेगा, यह भी नहीं कि इसे पीकर पानी मिला दिया जाए, मुँह में रखते हुए उसे सब पता चल जायेगा, दस रुपये ज्यादा देकर लाया है, दोनों बोतल.....फिर अब उसे आने में देर ही कितनी है, आता ही होगा'' और यह सोचते ही मुँह के चखना को जैसे-तैसे चबा कर निगल लिया । स्वाद का कोई सवाल ही ना था । साथ-ही साथ उसने मूढ़ी-कचरी को उसी तरह समेट दिया, जैसा अजनसिया समेट गया था ।

उसने आँख उठा कर एकपैरिया की ओर देखा । अजनसिया की कहीं छाया तक नहीं दिखी । जबड़े और मसूड़े में फँसे कचरी के कण को उसने जीभ से चाट-चाट कर समेटा था और फिर उसे कंठ के नीचे उतार दिया था । मुँह को फुर्सत मिलते ही उसने अपने होठों को विचित्र रूप देते सोचा था, ''चार कचरी छनवाने में पूरा दिन लगाता है, तो इससे चुनाव में टोले के लोग क्या छनेंगे । यह चोट्टा और कुछ नहीं करेगा, दस-पन्द्रह जूते बीच रास्ते में सब के सामने दिलवा देगा और कुछ नहीं । बड़े-बड़ों का इस दंगल में थाह-पता तो ढेर लगता है । मंच पर ही भाषण देते-देते बम से उड़ जाते हैं, तो मुझे कौन पूछता है । तब का चुनाव है, जब मुँह से कोई उरेफ नहीं निकालता था, और यदि उरेफ नहीं निकालता था, तो बात भी थी । आज के नेताओं की तरह बाढ़-सुखाड़ की राशि निगलने वाले नहीं थे, ना घरढुक्की करने वाले—अखबार में साफ फोटो छपती हैं, लाज है ! तब भी वही सब जीतते हैं....जीतने के लिए चाहिए बानर सेना, इन्द्रासन की परी और पैसा, और मेरे पास क्या है, एक अजनसिया और शाम के वक्त की एक बोतल दारू । इसका भी इन्तजाम आजकल अजनसिया ही करता है, नहीं तो वह भी नदारत । गिने-गुथे रुपये चुनाव के समय के लिए समेट कर रख दिया है । अब जो एक बोतल महुआ का इन्तजाम नहीं कर सकता, वह चुनाव के लिए इतने-इतने रुपये कहाँ से लाएगा। रुपये भी क्या एक-दो लाख, कम से कम तीन-चार लाख । एतने रुपये होते तो

क्या बड़ी पार्टी से टिकट ना ली होती—यह निर्दलीय । जो भी दस-पन्द्रह हजार जमा किया है, दिलो दा वाली अधकटिया खरीदने के लिए, वह भी यह अजनसिया खर्च करवा देगा, और कुछ नहीं, दौड़ने-धूपने और नाम दाखिल करवाने में ही तो अभी तक पाँच हजार उड़ चुके हैं । धन क्या है, अरे जरा सा मुट्ठि से खोलो तो उसे बीस जोड़े पैर निकल आते हैं, फिर क्या उसे पकड़ सको ।''

कुल्हड़िया एक क्षण के लिए उदास हो उठा, लेकिन जल्द ही अपने पर काबू पाते खुद को समझाया था, ''कोयरी धूप से डरे और गुआर पानी से, तो हो गया सब्जी उपजाया और भैंस पाला । चुनाव है, दस-पन्द्रह हजार गए तो समझो कि पसीना गिर कर रह गया, यहाँ तो बीस-पच्चीस लाख रुपये उड़ जायें, यह कहो कि देह का सारा खून गिर जाता है, तब भी लड़ने वाले ठहर नहीं जाते, तो मुझे ही क्या दुख । और यदि लगते-पिलते मैं भी निकल जाता हूँ, तब तो गिनते रहे ना सी. बी.आई मकान और मारते रहे ना छापा । टेर लगेगा नुनुआ को तब ना । टेर भी लगेगा तो केस ही ना करेगा । केस खुलते खुलते और सजा होते-होते तक क्या मैं जिन्दा ही रहूंगा । सरकारी केस तो नेताओं के लिए खिलवाड़ । केशो बाबू का क्या हुआ, भला उतनी बड़ी पार्टी के उतने बड़े मंत्री । किस सी.बी.आई में दम था जो घर में रखे सरकारी गोदाम के माल को निकाल लेता । समान कहाँ रखा था, और पुलिस कहाँ छापा मार रही थी ! मंत्री भी खुश, विरोधी भी खुश और पुलिस भी खुश—यह है राजनीति का खेल । और यदि यह पाशा मेरे पक्ष में आ जाता है तो मत पूछो.....'' सोचते-सोचते उसे लगा कि वह अब कमर और सर पर हाथ रखकर नाचने लगेगा । वह अन्दर से एकदम गनगना उठा और उसी खुशी में उसने अपना हाथ मूरी-कचरी की ओर बढ़ाया, लेकिन उसे छूने से पहले ही हटा लिया; जैसे वह धोखे से बिच्छू को पकड़ने जा रहा हो और फिर संभल गया हो । उसने समझ लिया था कि चखने से चुटकी भर भी उठाने का मतलब है, अजनसिया का गुस्सा बढ़ाना।

''कचरी के साथ फुलौरी भी छनवाने लगा था, इसीमें देर लग गई । क्या कहूँ मरदे, पर्व का मेला-ठेला हो या फिर इलेक्शन का मेला-ठेला, सब से ज्यादा भीड़ जंगली की ही दुकान पर'' फुलौड़ी को चूर कर मूढ़ी में मिलाते हुए अजनसिया ने कहा, ''झूठ नहीं बोलता हूँ, चुनाव में यदि जंगली खड़ा हो जाए, तो सब को मात दे दे । चुनाव चिन्ह होगा कचरी और भाषण पत्र में लिखा जायेगा—बड़ा वाला होटल बंद कर उसकी जगह पर मूढ़ी-घुघनी की दुकान खुलवाई जाएगी । सप्ताह में तीन दिन इच्छुकों को चखना मुफ्त दिलवाया जाएगा ।'' कहते-कहते अजनसिया ने जोर का ठहाका लगाया था और हँसते-हँसते कहा था, ''अब तो ऐसी ही उलूल-जुलूल घोषणा की जाती है, चुनाव जीतने के लिए । देश-समाज जाए चुल्हे-भांड़ में...अच्छा,

अपने घोषणा पत्र में क्या छपेगा, कुल्हाड़ी'' हठात् ही अजनसिया गंभीर हो उठा था।

''अरे हाँ, इस बात पर हमलोगों ने तो विचार किया ही नहीं ।'' कुल्हड़िया ने चखना का एक बड़ा कौर मुँह में डालते कहा । यह देख कर अजनिसया उससे भी बड़ा कौर मुँह में डालते हुए प्लास्टिक वाली गिलास में दारू डालने लगा ।

महुए की गंध बोतल से निकलनी थी कि दोनों के चेहरे फागुन में पलस के फूल जैसे खिल गए । अजनसिया ने पाव भर के ग्लास में लगभग ऊपर तक दारू भर दी थी । कुल्हड़िया उठा कर उसे मुँह में लगाता ही कि अजनसिया ने रोका, ''ठहरो, पहले ग्लास तो टकराओ । अरे मिनिस्टर बनोगे, कल मजलिस में पीओगे, और यदि ऐसी आदत रही तो और शहरी नेता क्या कहेंगे ।'' ग्लास को उसकी ग्लास से छुआते अजनसिया ने कहा था, और एक घूंट में पूरे ग्लास की दारू को कंठ के नीचे उतार लिया था, जैसे कि कुल्हड़िया ने ।

दोनों एक क्षण के लिए आँख मूंद कर मौन हो गए थे, जैसे कंठ से नीचे उतरते दारू की धार को पहचान रहे हों । और आँखें मूंदे हुए ही कुल्हड़िया ने कहा, ''हाँ, तो तुम भाषण की बात कर रहे थे, सो तो तुम्ही लोग जानो । मैं ठहरा अंगूठा छाप.....यह तो समझो कि जनतंत्र-गणतंत्र में हमलोगों के जैसे आदमी भी राज कर सकते हैं, नहीं तो गधे भी देख कर रेकने वाले नहीं थे । भगवान खूब सुख दे स्वर्ग में गाँधी बाबा और नेहरू जी को, जो ऐसा शासन लागू कर गए । लेकिन बात यहाँ नेहरू जी की नहीं है, बात यहाँ है मेरी ।''

''लेकिन सबसे पहले बात उठती है वोटरों की, और वोटर होते हैं जात के, धरम के । अब सबसे पहले यह सोचना है—दूसरों को किन-किन जातों का सहारा मिल सकता है । बाभन, राजपूत और वैश्य का सहयोग तो मिलने से रहा, वह तीनों तो जाएंगे भाजपा और कांग्रेस में । इने-गिने को छोड़ दो तो कोयरी और कुरमी तीर में । पासवान, लोजपा में और मुसलमान लोजपा-कांग्रेस छोड़ कहीं जा ही नहीं सकते । यादव तो लालू के हैं । लालटेन छोड़ कर कहीं भी नहीं जाएंगे। बचे कैथ, कैथों को पकड़कर ही क्या होगा । उनके वोट ही क्या हैं, जिधर लुढ़कें, कोई अन्तर नहीं पड़ता है, ऐसे में तुम्हारी ढ़िबरी कैसे जलेगी, पहले इसपर सोचना है । फिर तुम्हारे जात का वोट ही कितना है जो नारा दिया जाए—बेटी और वोट जात को ।'' यह सारी बातें अजनसिया ने आँख को मूंदे हुए ही किसी भविष्य जानने में लीन योगी-मुनी की तरह कही थी ।

''तो क्या तुमने इन बातों पर पहले नहीं सोचा था, जो आज आठ-दस हजार खर्च करवा कर सोचने को कह रहे हो ।'' अजनसिया की बातों से कुल्हड़िया की आँखें खुल गई थीं, लेकिन उसकी बातों में बेचैनी का आभास करते हुए भी

अजनसिया ने बिना आँख खोले कहा, ''फिकिर नॉट कुल्हड़ी, फिकिर नॉट । इलाका में इतने से जात थोड़े ही हैं, अरे छत्तीस करोड़ देवता हैं तो समाज में छियत्तर करोड़ जात भी । जैसे प्याज में परत-दर-परत होता है ना कुल्हाड़ी, वैसे ही यहाँ जात में जात हैं, राजपूत हैं तो उसमें है—जादन, भदौरिया, चौहान, बनौत, कछवाहा, केनवार, पछियारा.....कायस्थ हैं तो कायस्थ में श्रीवास्तव, अम्बष्ठ, करन, राढ़ी....बाभन हैं तो बाभन में कनौनिया, गौड़, मैथिल, राढ़ी....फिर देखो, राढ़ी कैथ है तो उसमें भी घोष, सिन्हा, मजूमदार, दास, दत्ता जितनी उपाधि उतने ही कैथ—सब पियाज के छिलके जैसे, जब चाहो उतार कर रखो । तुमने चीचों को देखा है ना, जब धारा-पाती चलते हैं तो एक-दूसरे के पूँछ को मुँह में लिए, पैर-गोड़ पटक दो तो सब तिल-मिल ।'' यह कह अजनसिया खूब जोर से हँसा था और बोला था, ''क्या समझे कुल्हाड़ी ! खाली पैसे चाहिए । इलेक्शन क्या है, पैसों का खेल । तुमने क्या किया है, और करोगे—यह कोई देखता है । फुल प्रचार करो और रुपये बहाओ, फिर देखो खेल। आग से आग लगती है कुल्हाड़ी । एक तो पन्द्रह हजार रुपये के बल पर चुनाव लड़ने चले हो, उसमें भी निर्दलीय और चिंता करते हो, लाख-करोड़ की....चलो पहले एक-एक गिलास और गले के नीचे उतारो, इन बातों में दिमाग ज्यादा खर्च होता है । ज्यादा सोचोगे तो दोनों बोतल गंगाजल बन जाएगा ।''

इस बार कुल्हड़िया ने ही दारू डाली थी, और अपने में गोठा गिलास से ज्यादा नहीं डाली थी । वह जानता है, अजनसिया डेढ़ बोतल भी पचा लेगा तो उक-बिक नहीं करेगा, उसका मन तो अद्धा में ही औल-बौल होने लगता है । सो उसने खुद से ज्यादा अजनसिया की ग्लास में ही उढ़ेला था और अपनी ग्लास लेकर उसकी ओर बढ़ाया था । इसपर अजनसिया ने कहा था, ''नहीं, जाम एक ही बार टकराई जाती है ।''

उसकी बातों से कुल्हड़िया को झेंप हुआ था, या फिर और कुछ और ऐसी बात नहीं थी । अब उसका मन अनमना हो चला था, चखना-दारू पर कम, जमा पूँजी और खर्च पर ज्यादा । उसे समझ में नहीं आ रहा था कि घंटे भर पहले यही अजनसिया किस-किस तरह ढाढस देने वाली बातें कर रहा था, और अब एक ग्लास डालते ही बदली-बदली बातें करने लगा ।'' तब तो घंटे भर बाद और नशा चढ़ने पर ये यह कह सकता है कि यह चुनावी मेला-ठेला में तुम्हारी दुकान क्या चलने वाली है । अरे जहाँ अब बिजली से चलने वाली उड़लखटोला चलती है, जहाँ बॉम्बे की हीरोइन पतुरिया से ज्यादा भीड़ जुटाती है, उसमें तुम चाहते हो कि कागज का घोड़ा नचा कर भीड़ को अपनी ओर खींच लूं; ऐसा भला होने वाला है । जुग-जमाना बदल गया, एक-एक करोड़ लेकर जीते दल की किस्मत पलट दी जाती है....तुम

क्यों पड़े हो कुल्हाड़ी इस चुनाव-पुनाव के चक्कर में । तुम्हारे बचे दस-पन्द्रह हजार रुपये तो पच्चीस आदमी को ही अपने पक्ष में लाने पर पार हो जाएंगे । यह क्या पचपन-साठ वाला चुनाव है कुल्हाड़ी ।'' कुल्हाड़ी ने ढेर सारी बातें एक साथ ही सोच ली थीं ।

उसके मन में कुछ शंका उठी थी, जिसके निदान के लिए उसने अजनसिया को घूरा, जो अब गले के नीचे दूसरे ग्लास को उतार कर एकदम खामोश हो गया था; अपने दोनों हाथ को पीछे कर और अपने सर को भी पीछे ही जरा-सा झुकाए, जैसे, बंद आँखों से सरंग देख रहा हो ।

''अभी इसे टोकना ठीक नहीं होगा । टोकने से भारी बवाल । कह चुका है—नशे के वक्त दिमागी बात नहीं । और इसीने कहा था कि चलो एकान्त में बैठकर सारी योजना तय कर ली जाएगी । छोटकी को कह दिया है—चुपचाप बोतल को पेड़ के जड़ में रख देने के लिए—वहीं पाँच दिन का प्लान सोच लिया जाएगा...और अभी सरंग देख रहा है ।...कुछ नहीं होगा, परसों की तरह ही सारा पी जाएगा और बोलेगा, इन बातों पर दूसरे दिन चर्चा । इस समय मूड खराब मत करो...कहीं ऐसा तो नहीं, यह....कोई ठिकाना नहीं, आज भले ही मेरे साथ है, लेकिन पिछले बीस सालों में यह किस-किसी पार्टी के साथ नहीं रहा है । किस पार्टी को यह देवता की पार्टी नहीं बता चुका, किस-किस नेता को यह मसीहा नहीं कह चुका है, जिसे मैं जानता हूँ कि हत्या करवाने के मामले में महीनों जेल काट चुके हैं.....आज वही अजनसिया मेरे लिए भी प्रचार करेगा, वोट दिलाएगा, लोगों को बताएगा—जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब कुल्हाड़ी जैसा देवता नेता का अवतार होता है—अधर्म और अन्याय से जनता को मुक्ति देने के लिए..... ।'' और आखरी बात सोचते ही उसका चेहरा फिर से खिल उठा ।

''क्या ठिकाना, अजनसिया की बोली का जादू काम कर ही जाए ।'' यह सोचते ही उसका मन गुदगुदा उठा था और खिले चेहरे से उसने दोनों हाथों से एक-एक मुट्ठी चखना उठाया था और दायें हाथ का लगभग सारा चखना मुँह में रखते हुए चबाने लगा था । फिर बायें हाथ का भी मुँह में रखकर । उसके जबड़े बड़ी तेजी से चलने लगे थे । लग रहा था, जैसे वह बड़ी तेजी से बहुत कुछ सोच रहा हो । देखते-ही-देखते वह ग्लास वाले दारू को मुँह से ना लगाकर पहले बोतल वाला ही गट-गट कर पी गया था और फिर ग्लास वाले को भी नहीं छोड़ा था ।

कुल्हड़िया का सर हन-हन करने लगा था । और देह-हाथ एकदम स्थिर। आँखें दोनों एकदम बंद और बंद आँखों में सपना घूमने लगा था—ठेले पर एक काठ की कुर्सी है, जिसपर कुल्हड़िया हाथ जोड़े बैठा हुआ है,....गले में कनेर फूलों की

आठ-दस माला है । उसकी आगे से फटी कमीज को कुछ इस तरह से सिला गया है कि सबसे पहले लोगों की नजर वहीं पर पड़े.....कुल्हड़िया के पीछे पाँच आदमी खड़े हैं, जोर-जोर से कठपुतली की तरह हवा में हाथ हिलाते नारा दे रहे हैं—गरीबों का नेता कैसा हो, कुल्हड़ी भैया जैसा हो.....ठेले के पीछे पचास लोग साथ दे रहे हैं और सबसे आगे है अजनसिया, जैसे वह रेगिस्तान में किसी गाड़ी को खींचता ऊँट हो ।

पर क्षण में ही कुल्हड़िया को फिर लगा कि वह धीरे-धीरे किसी देवता की मूर्त्ति बन गया है, और उसके आगे-पीछे के सारे लोग कीर्त्तन-भजन में लीन हैं, सब जोर-जोर से 'जय-जय' का नारा लगा रहे हैं । पंडित जी हाथ उठा-उठा कर कह रहे हैं—मूर्त्ति विसर्जन का समय हो रहा है, जल्दी करिये । कुल्हड़िया ने देखा, उसका ठेला गाँव के बड़े पोखर की ओर जा रहा है ।

उसने अपने सर को एक झटका दिया था, और फिर वहीं से सोचना शुरू किया था—अजनसिया आगे-आगे बढ़ कर भीड़ को समझा रहा है—'समूचा इलाका यह अन्दरुनी मन बना चुका है कि अबकी मुहर कुल्हाड़ी नेता की ढिबरी पर । बस अब आपलोगों का आशीर्वाद चाहिए ।'

कुल्हड़िया के हाथ अपने आप ही उठ गये थे, लेकिन नशा इतना चढ़ गया था कि वह वहीं चित्त होकर लेट गया ।

❐

वापसी

कुन्दन ने लैम्प की रौशनी एकदम हल्की करने के ख्याल से ही बत्ती को नीचे कर दिया था, एतना ही नीचे कि उस रौशनी में लैम्प की सिर्फ चिमनी ही दिख रही थी । जाड़े का दिन । जल्दी ही शाम उतर आई थी । माघ-पूस का दिन ही क्या....वैसे अभी बजता क्या होगा ? उसने झुक कर उसी मटियायी रौशनी में अपनी कलाई की घड़ी देखी । छः बज रहे थे ।

.....''क्या अभी भी सृष्टि आ सकती है ?'' उसके मन में शंका उठी थी, लेकिन, तुरन्त ही शंका को समेट भी लिया था, ''क्यों नहीं, अभी समय ही क्या हुआ है । शहर में तो वैसे भी आदमी रात भर आते-जाते रहते हैं, जाड़ा का दिन हुआ तो क्या, आठ-नौ बजे तक तो आवा-जाही लगी ही रहेगी.....कभी भी आ सकती है....नहीं आने का कोई सवाल ही नहीं है...

पता नहीं, उसके मन में कौन-सी बात उठी, जो उसने फिर से रौशनी तेज कर दी थी और कोठरी के चारो ओर नजरें दौड़ायी थीं । एक विद्वान की कोठरी जैसी होती है, वैसी ही थी । उसने अपने बिछावन पर दो-तीन किताबों के साथ डायरी को कुछ इस तरह से रख दिया था, जिसे देखते ही कोई यही समझे कि वह अभी पढ़ ही रहा था, जो वह आ गया ....सृष्टि का दिया उपन्यास 'गुनाहों का देवता' टेबल पर सामने में ही कुछ इस ढंग से रखा था कि आते ही कोठरी की किसी चीज पर सबसे पहले नजर पड़े तो उसी किताब पर । यह कहना मुश्किल था कि किताब पर कौन-सा लाल रंग का खिला फूल रखा हुआ है, जिसे कुन्दन ने एक बार उठाया था और फिर उसी तरह किताब पर आहिस्ता से रख दिया था ।

एक क्षण के लिए वह वहीं खड़ा रहा, फिर घूम कर कोठरी का सटा द्वार उसने अपनी ओर आहिस्ता से खींचा था । सूरज का प्रकाश एकदम खत्म हो गया था और उस जगह पर सड़क के किनारे-किनारे खड़े बिजली खम्बों पर ट्यूब और

बल्ब जगमगाने लगे थे, जिसकी रौशनी में काले शीशे-सी सड़क चमक रही थी । मोटर, स्कूटर बाढ़ में रेत की तरह सड़क पर बहे रहे थे और सड़क के दोनों ओर आदमियों की चीटी-सी कतार । कुन्दन ने उसी रौशनी में फिर अपनी घड़ी की सूई देखी थी—साढ़े छः ।

उसके चेहरे पर शांति का एक भाव झलक उठा और दरवाजे को फिर उसी तरह सटाते हुए टेबल के एक ओर पड़ी कुर्सी पर आकर बैठ रहा ''कहीं ऐसा ना हो कि सृष्टि बिना दस्तक दिए ही अन्दर आ जाय और उसकी सारी परेशानी एक बार ही उजागर हो जाए'' यही सोचकर उसने बैठे-बैठे ही फिर लैम्प की बत्ती को नीचे कर दिया ।

उसी मटियैले रौशनी में आज हठात् ही वह दिन याद आ गया, जिसे इस बीच में उसने कभी भी याद नहीं किया था, याद करने की जरूरत नहीं पड़ी थी । पाँच-छः महीने, पाँच-छः दिन की तरह गुजर गए थे । हाँ, पाँच महीने से ज्यादा नहीं हुआ होगा, जब से कुन्दन ने सृष्टि को पढ़ाना शुरू किया था । सृष्टि के बाबूजी धरमचंद शहर के नामी वकील । जैसी शान-शौकत, वैसे ही शीलता में भी बढ़-चढ़ कर । कौन-सा ऐसा घर होगा जहाँ दिन में एक बार भी धरमचंद की चर्चा नहीं हो जाती । किसी घर के ऐसे माता-पिता नहीं होंगे, जो अपने बच्चे को सृष्टि की तरह सुशील और पढ़े-लिखे होने का उपदेश मौका मिलते ही नहीं देते होंगे । यह कम बड़ी बात नहीं थी कि ऐसे घर में कुन्दन को पढ़ाने का काम मिल गया था, उसमें भी सृष्टि को, जिसके बारे में कॉलेज से लेकर मुहल्ले तक में हल्ला था कि इसके सामने तो प्रोफेसरों की घिघ्घी बंधी रहती है—ना जाने, कब क्या पूछ दे । साईन्स की विद्यार्थी थी सृष्टि, बस जरा-सा कहीं कुछ समझने में उसे दिक्कत थी तो हिन्दी के नये किस्म की कविता । यह बातें उसने विमलेन्दु से सुनी थीं । नहीं तो इतने बड़े शहर में क्या है—किसे मालूम । फुर्सत कहाँ है, किसीको । विमलेन्दु, उसका पिसेरा भाई है, और जो खुद भी सहायक होने के साथ-साथ सृष्टि को पढ़ाने का काम भी करता था, ने ही बताया था—सृष्टि की पढ़ाई के लिए एक टीचर ठीक भी किया गया था । कोई शक नहीं—खूब विद्वान थे । सिर्फ हिन्दी के ही नहीं, जैसी लच्छेदार हिन्दी, वैसे ही आचारशास्त्र और राजनीति के भी । धरमचंद तो गदगद थे उस टीचर को पाकर, लेकिन सृष्टि ही नाखुश । अब जब सृष्टि ही नाखुश थी तो वह टीचर उस घर में कितना टिक पाता ? बात यह है कि सृष्टि है जरा खुले मिजाज की लड़की, किसी बात की चर्चा किसी से भी कर दे सकती है, पंडितों से भी प्रेम की चर्चा धर्मविज्ञान की तरह कर सकती है । बस यही हुआ था—एक दिन सृष्टि ने पूछ दिया—गुरुजी आपने कभी किसी से प्यार किया है ?....टीचर तो सुनते

ही आग हो गए थे, जैसे गंगा नहाने जाते किसी पुजारी पर किसी ने अंडा फोड़ दिया हो । उनका समूचा नीतिशास्त्र लंगोट बांध कर खड़ा हो गया था और फुंफकारते हुए जो घर से बाहर निकले तो दुबारा नहीं आये, महिनवारी लेने भी नहीं, जबकि महीना पूरा होने में एक दिन और बचा रहा था । धरमचंद ने उनकी खोज खबर भी लेनी चाही थी, लेकिन सृष्टि ने मना कर दिया था । ठीक दस दिन बाद ही हिन्दी पढ़ाने के लिए कुन्दन को उस घर में बुलाया गया था । बुलाया क्या गया था, यह कहिए कि विमलेन्दु ने उसके हिन्दी-ज्ञान का इतना ही पुल बांध दिया था कि दूसरे ही दिन सृष्टि को पढ़ाने के लिए बुला लिया गया था । नहीं बुलाने का कोई सवाल ही नहीं था, विमलेन्दु उस घर का ऐसा विश्वास पात्र था ही कि जिसकी बात को टालना धरमचंद को भी मुश्किल लगता ।

और सचमुच में कहने के मुताबिक ही कुन्दन ने अपने हिन्दी-ज्ञान का अद्‌भुत परिचय दिया था । पहले तो वह काफी घबराया था, लेकिन वहाँ पहुँचकर उसे लगा—बेकार ही वह रात भर पढ़कर रियाज करता रहा और दुकान जाकर नई-नई किताबों को उलटाने की जहमत उठाई । जब रियाज की ही थी और किताबों को उलटाया ही था, तो वह सब सृष्टि के सामने में रखने से वह चूका नहीं था । आईने की तरह घूम जाती है कुन्दन के सामने सारी बीती बातें । औसतन लड़की से कुछ ऊँचा कद, ना काली, ना गोरी—ना मोटी, ना पतली—छरहरी, जिसपर पंजाबी कुरता और पैजामा । कुर्ते पर ऊपर से लेकर नीचे तक राजस्थानी काम । आँख से लेकर समूचे देह में अद्‌भुत चंचलता, और बोली ? बोली तो देहात की किसी औरत की तरह मुक्त, पीपल पेड़ से छन कर आती जेठ की हवा.....कुन्दन सृष्टि से कुछ पूछता, इससे पहले सृष्टि ने ही कहा था—पढ़ाई सीधी वहाँ से ही शुरू होगी, जहाँ पहले वाले गुरु जी छोड़ गए हैं, यानी स्त्री के प्रति कवि की भोगवादी दृष्टि—विषय यह था कि साहित्य में नारी के सौन्दर्य का बढ़-चढ़ कर चित्रण क्या पुरुष की भोगवादी दृष्टि का सबूत नहीं है, और क्या स्त्री का थोड़ा-सा भी हँस कर बोलना, बन-ठन कर रहना पुरुषों के लिए इस बात का प्रमाण नहीं बन जाता कि वह स्त्री का पुरुष के लिए रसमय निमंत्रण है ?

कुन्दन ने बड़े शांत स्वर में समझाया था कि देह का सौन्दर्य, चाहे स्त्री का हो कि पुरुष का, वह आखरी सौन्दर्य नहीं हो सकता । सौन्दर्य तो अनन्त विचार की चेतना है, जिसे मोटा-मोटी आदर्श का बोध कहा जा सकता है । घंटा भर कुन्दन देह और प्रेम पर बोलता ही रह गया था । सृष्टि तो दंग थी ही, धरमचंद भी दंग थे, जो आंगन में ही एक कुर्सी लगा कर बैठ गये थे । वैसे तो दिखाने को यही दिखा रहे थे कि वे फाइल को समझने में व्यस्त हैं, लेकिन उनका ध्यान कुन्दन की बातों

पर ही था । शायद अभी वो और देर पढ़ाता, लेकिन बीच में ही धरमचंद ने कुन्दन को बुला लिया था और सामने की कुर्सी पर हाथ पकड़ कर बिठाते हुए सीधे पूछा था, ''क्या कहीं और ट्यूशन चलता है ?''

''नहीं'' उसने बड़ा संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था ।

''कहाँ पर डेरा रखा है ?''

''तिलकामांझी में ।''

''ठीक है । वैसे यह कोठरी देख रहे हैं न, इसका दरवाजा सड़क की ओर खुलता है, और खिड़की आँगन की ओर । यह मेरी ही कोठरी है । यदि आपका मन हो कि मैं यही रहूँ, तो कोठरी खुलवा दूंगा । कोई दिक्कत नहीं होगी, कोठरी में सारी व्यवस्था है ।''

''बाबू जी ठीक ही तो कह रहे हैं ।'' सृष्टि ने हुलस कर कहा था ।

लेकिन कुन्दन ने इस बात पर कोई जवाब नहीं दिया था । एकदम चुप बैठ गया था । उसकी चुप्पी देखकर धरमचंद ने बात को आगे बढ़ाया था, ना ही सृष्टि ने । बात को बदलने के ख्याल से ही उन्होंने कहा था—अभी प्रेम पर जो विचार रखा—वही ठीक है, मैं भी मानता हूँ कि प्रेम शरीर को बांधने के लिए सिर्फ औजार ही नहीं है, यह मन की मुक्ति का भी मार्ग है, जिसकी श्रेष्ठ परिणति त्याग में होती है, प्रेम सिर्फ शरीर का ही नहीं, मन की परिभाषा भी होता है....वैसे तो नये विचार आजकल के आदमी को बाँधने वाला ज्यादा है—कह कर वे निर्मल हँसी हँस दिए थे ।

कुन्दन को एक-एक बात याद है । पाँच-छः महीने बीतने से ही क्या हो जाता है । याद रहने को तो आदमी को बचपन की बातें याद रह जाती हैं । बात-बात में ही एक दिन धरमचंद ने उसे बताया था—सृष्टि के संकेत पर उन्होंने इस कोठरी को खुलवाया था और अपनी रुचि के अनुसार ही सृष्टि ने उस कोठरी के सामान को इधर-उधर कर सजाया था, जिसके कारण ही आफिस की तरह लगने वाला वह कमरा ड्रॉइंग रूम में बदल गया था । कोठरी से नेताजी और गांधी जी की तस्वीर को तो नहीं उठवाया था, लेकिन जिस दीवार पर खाली ठाकुर प्रसाद का कलैण्डर टंगा था, उसे हटवा कर वहाँ शकुन्तला की एक बड़ी-सी पेंटिंग टांग दी थी, जो वह अपनी कोठरी से निकाल लायी थी । माँ की कोठरी से नरगिस का पोट्रेट लाकर उसने उसे भी उसी दिवाल पर टांग दिया था । धरमचंद जी से उसने जाना था कि सारे परिवर्तन के बाद भी गांधी जी और नेताजी के तस्वीर को उसने जरा भी नहीं छूआ था । इन दोनों तस्वीरों की जानकारी देते उन्होंने बीच में ही कहा था—जिस दिन ये दोनों तस्वीरें घर में आई थीं, उस दिन लगा था जैसे कि तस्वीर

नहीं, दोनों का ही आगमन घर में हुआ हो । सृष्टि के लिए तो दोनों—गुरुदेव; बिना सर झुकाए बाहर नहीं जा सकती, यह दो तस्वीर नहीं है, सृष्टि का शील और दृढ़ता का चिन्ह है, जो उसने इस घर में पाया है, जिसे छोड़ वह जी नहीं सकती । इसी कारण से उसने तस्वीर नहीं हटाई । मैंने जब इस परिवर्तन पर कहा—''वाह, क्या हुलिया बदल कर रख दिया तुमने—नेताजी और गांधी जी के साथ, शकुन्तला-नरगिस। अजीब टेस्ट है नयी पीढ़ी का । वन्दे मातरम् को भी पॉप सांग बनाकर ही गाने का शौक ।'' तो सृष्टि ने मेरी बातों पर जानते हैं, क्या कहा ! कहा, ''लेकिन इसमें खराबी ही क्या है बाबूजी, अब दो आँखें मिली है, तो दोनों आँखों से ही दुनिया को देखना चाहिए । एक आँख मून्द कर देखने से आदमी सिर्फ अपनी ही सूरत नहीं बिगाड़ लेगा, देखने वाले को भी वह कैसा लगेगा, यह तो सोचा ही जा सकता है....अब आप ही देखिए ना ।'' और यह कह कर सृष्टि ने एक आँख बन्द कर मुझे देखा था तो मैं भी खिलखिला कर रह गया था और फिर हँसते-हँसते ही कहा, ''तुम से बात करने में पार पाना मुश्किल । वैसे कोठरी को देखने लायक जरूर बना दिया है.....बस थोड़े से बदलाव की जरूरत है...यह कुन्दन वाली कुर्सी है न, इसे उस ओर कर दो ।'' जानते हैं उस पर सृष्टि ने तुनक कर कहा, ''नहीं बाबूजी, नहीं, गुरुजी आदि का सर वैसे ही नीतिशास्त्र की सेन्ट्रल लाइब्रेरी बना रहता है । सड़ने से बचाने के लिए यह व्यवस्था की गई है ।'' कहते-कहते सृष्टि के होठों पर भी मुस्कान फैल गई थी और मैं तो तब एकदम से खुल कर हँस पड़ा । हँसते-हँसते ही उन्होंने यह भी कह दिया था, ''मैं तो समझता हूँ कि यह परिवर्तन सृष्टि ने इसीलिए किया है कि आप यहीं रहें । विमलेन्दु तो रह ही रहे हैं ।''

कुन्दन की आँखों में वे सारे दृश्य घूम जाते हैं—उसने साइकिल वहीं दीवार से सटाकर खड़ी की थी और कोठरी की ओर मुड़ गया था...''आज से यहीं पढ़ाई-लिखाई चलेगी'' अभी कोठरी में मैं घुसा भी नहीं होऊँगा कि अपनी कुर्सी पर बैठी सृष्टि ने खड़ा होते कहा था और सामने की कुर्सी की ओर ईशारा किया था। मंत्रमुग्ध की तरह मैं उसी कुर्सी पर बैठ रहा । ''तो गुरुजी, आपको मालूम है कि कल बात को कहाँ पर छोड़ दिया था आपने ?'' सृष्टि ने गुरुजी पर कुछ विशेष बल देते ही पूछा था ।

''बेशक, उर्वशी की शंका के समाधान में था पुरुरवा । पंक्ति थी,

दृष्टि का जो पेय, वह रक्त का भोजन नहीं है
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है ।

''लेकिन आपको पुरुरवा की ऐसी बातें कुछ अटपटी-सी नहीं लगती, जो नहीं, तो उर्वशी रक्त की भाषा पढ़ने को क्यों कहती । ठीक ही तो रक्त दिमाग से ज्यादा

बलवान होता है, क्या आपको ऐसा नहीं लगता । मुझे तो यही लगता है, लहू के सामने में बुद्धि का कोई बल नहीं चलता । यदि ऐसा ना होता तो कण्व जैसे ऋषि के आश्रम के बीच पल-बढ़ कर भी शकुन्तला का विवेक कैसे बह जाता ।''

उस समय अकबकाया मैं बस इतना कह पाया था, ''लहू का ऐसा पुकार नैतिक नहीं माना जा सकता ।''

''लेकिन गुरु जी, आप यह तो बताइये कि सीमोन द बोउवार आजीवन अविवाहित सार्त्र के साथ रहे, जिससे प्रभावित होकर अज्ञेय जैसे कथाकार भी 'नदी के द्वीप' उपन्यास लिखते हैं, आप इस संबंध में क्या कहना चाहते हैं ।''

''सृष्टि, बहस को कोई अंत नहीं हो सकता । लेकिन तुम जिस सीमोन द बोउवार और सार्त्र की बात कर रही हो, उनके बारे में तुम्हें मालूम होगा कि बोउवार सार्त्र से पहले जिस प्रेमी को चाहती थी, वह उससे ब्याह भी करना चाहता था, लेकिन असमय में प्रेमी की मृत्यु ने उसके मन को झकझोर दिया और इसी की प्रतिक्रिया हो सकती है कि बोउवार को शादी से ही नफरत हो गई थी, शायद यही कारण था कि सार्त्र जब बोउवार के जीवन में आया और उसने भी उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा तो उसने इन्कार कर दिया था । सीमोन द बोउवार अपनी जिन्दगी भर अपने प्रेमी मैर्लोपोन्ती को नहीं भूल पाई थी'' उस समय यह कहते-कहते मैं अचानक ही चुप हो गया था और मुझसे कहीं ज्यादा गंभीर हो गई थी सृष्टि ।

फिर उर्वशी काव्य के पन्ने उलटते-पुलटते मैंने ही कहा था, ''तब स्त्री में पुरुष से ज्यादा खतरों से खेलने का साहस होता था, बोउवार की ही बात नहीं है, उर्वशी भी अविवाहित रहकर पुरुरवा को पुत्र दे सकती है...'' उस समय ना जाने, मन में क्या सोचते हुए किताब को मोड़ एक ओर रख दिया था । सृष्टि ने कुछ जवाब नहीं दिया था । उसकी आँखें कुछ देर के लिए मेरी आँखों पर गड़ कर रह गई थी, जैसे की मेरी । कुछ क्षण के लिए ऐसा हो गया था, जैसे उस सन्नाटे में कोई और होता तो आसानी से दोनों के दिलों की धड़कन सुन लेता । हठात् ही हम दोनों की नजरें झुक गई थीं । जैसे, दोनों दो कठपुतली हों, जो एक ही ईशारे पर एक ही तरह नाँचते-बैठते हों...

कुन्दन को एक-एक बात याद है । छोटी-छोटी बातें याद आ रही है, जिस पर उसने कभी भी ध्यान नहीं दिया था—एक बार सृष्टि ने कागज से मटर की तरह गुल्ली बनाई थी, और फिर टेबल पर रख तर्जनी से इसतरह उड़ाया था कि वह मेरी छाती से टकराते हुए फिर उसके पास लौट गई थी, जिसे उसने फिर उसी तरह उड़ाया था, जो दूसरी बार मेरे बाल से टकराते दूर छिटक गई थी । जब मैंने कहा था, यह कैसी बचकानी हरकत है ? .....इसपर उसने कहा था, ''इसमें परेशान होने की कोई

बात ही नहीं है । । फ्रायड बाबा कहते हैं कि आदमी के अन्दर गन्दगी ही भरी है और डार्बिन बाबा कहते हैं कि आदमी बन्दर का विकास है, तो अचरज ही क्या, जों मेरी हरकत बन्दर की तरह लगे और गन्दी भी ।'' इतना कह वह मुस्कुरायी थी।

''और तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मार्क्स बाबा ने यह कहा है कि मनुष्य अपने आस-पास की परिस्थिति का निर्माता होता है और उसका भोक्ता भी....'' पता नहीं मेरी बात का उसने क्या अर्थ लिया था जो कि वह हठात् ही चुप हो गई थी, और तब सृष्टि तीन दिन तक ऐसी ही खामोश बनी रही कि कह नहीं सकता । बात धरमचंद जी तक पहुँच गई थी । उस दिन मेरा क्या हाल हो गया था....वे आए थे और कहा था—कुन्दन, क्या बात हो गई है कि सृष्टि आजकल घर में चुप-चुप रहती है, ना आपकी कोई बड़ाई, ना कोई शिकायत । आखिर मामला क्या है....अब मामला क्या बताया जाता उन्हें, बस कह दिया—पढ़ने में मन नहीं लगाती है, इसी में कुछ कह दिया तो यह नाराजगी है....मेरी बात सुनकर ही वे हँस पड़े थे । कहा था—इसमें मेरी वकालत काम नहीं कर पाएगी । आपस में ही मुद्य और मुद्दालय समझौता कर लें, तो अच्छा ।

इस बीच में सृष्टि ने टेबल के नीचे हाथ कर ना जाने कब कागज की बड़ी सी गोली बना ली थी और धरमचंद जी के जाते ही गोली को टेबल पर रख, मध्यम उंगली को अंगूठे से टिका कर जिस तरह उड़ाया था कि वह गर्दन से टकराते सीधे गंजी में जाकर फँस गया था । मैं विचलित हो उठा, तो सृष्टि बच्चे की तरह ही ताली बजाते खिलखिला पड़ी थी, मेरी ओर से बेखबर । उस समय मैंने कितनी तेजी से उस गोली को गंजी से निकाला था और टेबल पर रख ठीक वैसे ही उड़ाया था, जैसे कि उसने और जब गोली उसी तरह उसके गर्दन पर टकराती ओढ़नी में फँस गई थी, तो हँसते-हँसते उसने कहा था—''निशाना साधते हैं ?''

सृष्टि की उस मुक्त हँसी की तुलना मेरे पास कुछ भी नहीं है—कुन्दन ने मन-ही-मन सोचा था—सेमल की रुई से भी ज्यादा गुदगुदी, मुलायम और उजली, जिसे देखकर वह कैसा मुग्ध हो उठा था—जैसे नदी से उसने पनसोखा उठते देखा हो.....

कुन्दन की आँखे खुद-ब-खुद बंद हो गईं, जैसे उस क्षण को दोबारा देखना चाहता हो । आँख बन्द हुई तो उसे यह भी ख्याल आया, ''गुनाहों का देवता' उसके सिलेवस में तो नहीं है, फिर क्यों सृष्टि ने जिद्द की थी, अगले हफ्ते से इसी उपन्यास पर व्याख्यान होगा । उपन्यास थमाते हुए मुझसे कहा था, ''गुरुजी, यदि उपन्यास पढ़ भी चुके हैं, तब भी पढ़ कर आइयेगा । मन में बहुत सारे सवाल हैं, जो पूछना है ।'' घर लौटने पर उसने पढ़ने के ख्याल से उपन्यास उलटाया था ।

पन्ने उलटाते ही एक चित्र देखा था—किताब के पन्ने पर बनाया—एक ठूंठ है, ठूंठ की फुनगी पर एक फूल और ठूंठ का आधा भाग एक विशाल अजगर के जबड़े में फंसा । कुन्दन ने गौर से देखा था, वह फोटो छपा नहीं था—हाथ से बनाया गया था और चित्र के एक कोने में लिखा था—सृष्टि । उसे अचरज हुआ था—किताब के हर पाँच पन्ने के बाद वही चित्र बनाया गया था—छोटे-बड़े आकारों में । कितनी बार मन हुआ—इसका अर्थ सृष्टि से ही पूछ ले, लेकिन ऐसा नहीं कर पाया था ।

बीते बातों से कट कर कुन्दन ने सोचा—क्या मेरी चिट्ठी उसके सारे सवालों का उत्तर नहीं है, यह सोचते ही, उसे एक झटका-सा लगा और वह उठ खड़ा हुआ । फर्श पर चहलकदमी करने लगा । उसका दिल अजीब तरह से धड़कने लगा था, कभी तो लगता, वह एकदम रुक गया हो, और कभी-कभी बिल्कुल तेज, जैसे, छाती नहीं, लोहार की भट्टि धुक-धुक करती हो ।

उसे इस बात का ख्याल भी नहीं था कि कोठरी में कजरोटी की कालिख की तरह अन्धकार फैल गया था । लैम्प की ओर देखा, तब भी उसका मन हुआ—कोई रौशनी ना करूँ, वैसे ही अन्धकार रहने दूँ, लेकिन नहीं, यदि सृष्टि आ ही जाए । यह बात मन में आते ही वह फिर चौंक पड़ा, जैसे दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी हो । उसने घूम कर देखा । लेकिन, ऐसी कोई बात नहीं थी, किसी ने दस्तक दी होती तो उत्तर ना पाकर फिर से दस्तक ना देता, दरवाजे भी ऐसे ही सटे हैं । कुन्दन ने कुन्डी छूकर देखी थी—कहीं उसने भूल से लगा तो नहीं दिया । नहीं, कुन्डी भी खुली ही है । उसे ही भ्रम हुआ । उसने खिड़की की ओर देखा, वह भी खुली । कि तभी उसके मन में आया—कोठरी में रौशनी ना देख हो सकता है सृष्टि लौट भी जाय....लेकिन, यह क्या जरूरी है कि सृष्टि आ ही जाएगी ?....यदि नहीं आती है, तो इसका मतलब है कि कल से मेरा वहाँ जाना बन्द....अच्छा नहीं किया, मुझे इस तरह उसके हाथों में चिट्ठी थमा कर नहीं आना था । खोल कर पढ़ा होगा तो क्या-क्या सोचा होगा....लेकिन नहीं, सृष्टि, मुझसे जो नहीं कह सकती थी, वही तो मैंने चिट्ठी में लिखा है । अब सारा फैसला सृष्टि के हाथ में है । और यह हो नहीं सकता कि वह नहीं आए । ....कितने दिनों से उसका चुप-चुप बन कर रहना—जैसे कितनी-कितनी बातें कहना चाहती हो, जिसे वह अपने बंद होठों और कभी-कभी बंद आँखों से कहती थी । मेरी चिट्ठी उसकी शंका का निदान है.... आखिर बिना संदर्भ के ही वह यह क्यों पूछ बैठी थी—कुन्दन, उर्वशी क्या ठीक में ही पुरुरवा के पुकार पर स्वर्ग से दौड़ कर धरती पर आ गई होगी ? और मेरे यह कहने पर, ''सिद्ध करना है क्या ?'' वह किस तरह कठुआ कर रह गई थी....नहीं मैंने कुछ गलत नहीं लिखा है, वह सृष्टि के मन की बात है...

कि तभी सटा हुआ दरवाजा खुला । दरवाजे को धीरे से पीछे किया गया था । सृष्टि को देखते ही, कुन्दन आग पर चढ़े दूध की तरह उफन उठा । जैसे किसी गुफा में खजाने का द्वार मिल गया हो उसे । मुँह से निकला, ''सृष्टि ! मुझे पूर्ण विश्वास था, तुम मेरी पुकार पर जरूर आओगी, तुम रुक नहीं सकती...अरे, द्वार पर ही क्यों हो, भीतर आओ'' कुन्दन ने दोनों हाथ बढ़ाया था ।

''नहीं कुन्दन नहीं ।'' फिर सृष्टि ने चिट्ठी को कुन्दन के हाथों में थमाते कहा था, ''यह तुम्हारी चिट्ठी वैसी ही बंद है, जैसी तुमने दी थी । शायद उसे खोलने की मुझे कोई जरूरत ही नहीं थी । मुझे तुरंत लौटना है, बाबूजी के लौटने से पहले।'' इतना कह सृष्टि ने दरवाजा के दोनों पट को फिर से सटाया था और सड़क पर उतर आई थी । बदहवास बने कुन्दन ने खिड़की से ही सड़क की रौशनी में देखा था—एक छाया धीरे-धीरे लम्बी हुयी है, जो उसकी खिड़की पर फैल कर हठात् ही खत्म हो गयी है ।

❐

चन्दन विष व्यापत नहीं

नूरपुर स्कूल छोड़ने के बाद यह उससे मेरी पहली मुलाकात थी । ठीक फुलवड़िया मोड़ पर वह मिल गया—एक पान की दुकान पर खड़ा किसी का इन्तजार ही कर रहा था ? देखते ही उसने आवाज दी—''विकास, अरे रुको'' और उसने अपने दोनों हाथ उठा दिये थे, जिसके कारण भीड़ को चीरते हुए मेरा ध्यान सीधा उसी पर गया। उसे वहाँ देख मुझे कुछ अचरज हुआ, लेकिन अपने सारे भावों को छुपाते उसी की ओर बढ़ गया और नजदीक आकर कहा, ''मन्टु, तुम यहाँ ?''

''पहले तुम ही बताओ कि तुम यहाँ ?''

''यहीं तगेपुर हॉइस्कूल में बदली हो गयी है । अब साइकिल से ही आना-जाना करता हूँ ।'' यह कह मैंने साइकिल वहीं दुकान की एक ओर खड़ी कर दी, ''लेकिन तुम यह बताओ कि तुम यहाँ पर क्या कर रहे हो ?'' यह कह मैंने इधर-उधर नजरें दौड़ाईं। कहीं कुछ नहीं । कुछ होने का सवाल भी नहीं था । आस-पास कोई भी तो नहीं है, है भी तो सौ-पचास बांस की दूरी पर । मुझे यह मालूम था कि इस इलाके में मंटू का न तो कोई संबंधी रहता है, न तो कोई दोस्त-मोहिन ।

मन्टू ने मेरे सवाल का कोई जवाब न देकर उल्टा मुझसे ही पूछा—''स्कूल तो दस-साढ़े दस से लगता है, और तुम अभी ही....यह नौ ही... ।''

''बाजार का कुछ सामान है, सोचा, जल्दी ही निकल जाऊँ तो स्कूल से लौटते वक्त समान खरीदने-उरीदने का झमेला नहीं रहेगा ।''

''खैर, तब तो तुम्हें समय है, एक काम करो'' उसने खुद से दुकान के नीचे रखी बेंच को खींचा और उसे रुमाल से झाड़ते बोला, ''तुम बैठकर दस मिनट मेरा इन्तजार करो । तुम्हारी साइकिल लेकर जाता हूँ । बस भेंट किया और लौटा ।'' और उसने मेरे किसी उत्तर की अपेक्षा किये बिना, मेरी साइकिल ली और साइकिल के पछे से अपनी लम्बी दायीं टांग को पार करते सीट पर जम गया । यद्यपि उस जगह न तो दूर-दूर तक और न तो आगे ही कोई आदमी दिखता था, तब भी उसने तीन-चार

बार घंटी बजाई, और जल्दी-जल्दी पैडल घुमाता आगे बढ़ गया ।

पीछे से मैंने उसे देखा तो मुझे हँसी आ गई । छः फुट का लम्बा-चौड़ा जवान । अभी भी देह पर वही लंबा खलत्ता कुर्त्ता और चूड़ीदार पैजामा । मेरी छोटी-सी साइकिल को चलाने में उसे कितनी दिक्कत हो रही थी, वह देखते ही कोई भी हँस पड़े । प्रतिक्रिया देखने के ख्याल से ही मैंने पान वाले की ओर देखा था, जिसके होठों पर पान के रंग की तरह मुस्कान फैल रही थी । मुझे अपनी ओर देखते देखा तो अचानक ही गंभीर हो गया, शायद यह सोच कर, कि मुझे उसका मुस्कुराना अच्छा नहीं लगेगा । और यह बताने के लिए कि वह उसे देख भी नहीं रहा था—उसने एक बड़ी-सी कटोरी में रखे पानी को पान के पत्ते से ही पान के ढेर पर छिड़कना शुरू कर दिया था, थोड़ा-सा भी मेरी ओर देखे बिना और पानी छिड़कते हुए ही पूछा, ''पान-ऊन चलेगा क्या बाबूजी ?''

''नहीं, मैं पान नहीं खाता हूँ ।''

''कसैली ही मुँह में दबाइये ।'' इस बार उसने सामने में रखी एक छोटी-सी कटोरी से कसैली के दो टुकड़े उठाये और मेरी ओर बढ़ा दिये ।

वैसे तो मैं कसैली भी नहीं खाता, लेकिन हर बात में इन्कार करना ठीक ना होगा, यह सोचकर ही कसैली हाथ में ले लिया और दायें हाथ के अंगूठे, तर्जनी और मध्यमा के बीच टुकड़ों को घुमाने लगा ।

''आप मास्टर साहब के कौन लगते हैं ?'' दुकानदार ने पान के पीछे की डंडी को तोड़ते और फिर बीच से चीरते हुए मेरी ओर देख कर कहा ।

''दोस्त है ।'' मैंने सोचा था, इसके बाद वह और कुछ पूछेगा, लेकिन ऐसी बात नहीं हुई । पहले की तरह ही दूसरे पान की डंडी तोड़ी, बीच से चीर कर उसपर चूना-कत्था लगाया और एक लाल रंग के कपड़े में हाथ पोछ लिया ।

''सो क्या, कुछ बात है क्या ?'' मैंने ही उससे पूछा । लगा उसके प्रश्न करने के पीछे जरूर कोई रहस्य होगा ।

''बस यूँ ही, जानना चाहता था कि वे किस पार्टी के नेता हैं ?''

''अरे नेता-वेता नहीं है। सुना नहीं, बताया कि यही मुखेरिया हॉई स्कूल में मास्टर है।''

''आज समझा । चेहरे-मोहरे से आज तक इनको मैं कोई नेता ही समझता रहा ।'' यह कह कर उसने अपने सर को बायीं ओर झटक दिया था, जैसे उसे अपनी समझ पर अचरज के साथ-साथ ग्लानी भी हुई हो । और फिर अपनी दोनों हथेलियों को केहुनी से जोड़ कर उसे फैले हुए कमल की तरह बनाया था, जिसमें वह अपनी ठुड्डी डाल कर मौन हो गया था ।

मुझे ख्याल आया, मंटू की बदली जब जमदाहा स्कूल से नूरपूर स्कूल में

हो गई थी, तो इसे नेता ही समझ कर साल भर तक हेडमास्टर ने कोई टोक-टाक नहीं की थी । गोरा दप-दप चेहरा तो है ही, हाथ में तांबे और चांदी के रंग की तार से गुंथी मोटी मठिया मंटू को आकर्षक बनाती और दबंग भी । मुझे याद है, साल भर में एक दिन भी ठीक टाइम पर वह स्कूल नहीं आया होगा । कभी बारह बजे, और कभी एक बजे । एक बार हेडमास्टर ने टोक दिया तो अपने निचले होठ को दाँतों से दबाया और फिर छोड़ते कहा—''माट साहब, आपकी बात मैं समझ सकता हूँ, मोटर गाड़ी और ट्रेन नहीं.....एक मेरे लिए ही ना ट्रेन दो घंटे पहले पहुँचेगी और न मोटर । गाड़ी सिर्फ मुझे ही लिए हुए आपके पास पहुँचा देगी क्या ? क्या मेरे बिना आपका स्कूल बंद ही हो जाता है । अरे गाड़ी-घोड़ा है, बीच-बीच में पैसेंजर उठाएगी ही, अब यदि आने में मोटर बीस बार ही रुकती है, और पाँच-पाँच मिनट देर होती है तो सोचिए, इसी में डेढ़-दो घंटे पार । अब यदि मैं कुछ देर कर आता ही हूँ, तो इसे ध्यान में रखने की जरूरत नहीं है ।'' और फिर मेरी ओर ईशारा कर कहा था, ''पूछ लीजिए विकास से, जमदाहा में कभी भी क्या मैं लेट आता था, हाँ, पंक्चुअल कहलाने वाला विकास लेट आता हो तो आता हो ।''

उस समय तो मेरी हालत बिल्कुल विचित्र हो गई थी । अब बोलूँ तो बोलूँ क्या....मुझे विश्वास भी ना था कि मंटू की बदली उसी स्कूल में हो जायेगी, जिसमें मेरी । इसके पहले दोनों जमदाहा स्कूल में ही थे । तब मेरी यही कोशिश रही कि स्कूल लगने से पाँच मिनट पहले पहुँचुं । तब भी कुछ-न-कुछ देर हो ही जाती.. कैसे ना होती—बौंसी से जमदाहा तक जाने वाली गाड़ी बस एक ही और उसी गाड़ी से सबका आना-जाना । गाड़ी खुली नहीं की पीछे से 'हो-हो' की आवाज होती और गाड़ी रुक जाती । नहीं रोकने का मतलब था—दूसरे दिन गाड़ी का ईंट-पत्थरों से शीशा तो चूर करते ही, ड्रायवर भी माथा-कपाड़ फटवा लेता । दूसरी बात यह भी थी—सड़क पर ही हाथ, पाँच हाथ पर बित्ते-बित्ते भर के गड्ढे । सुनसान पाकर तेज चले भी तो कैसे । इसमें पाँच-दस मिनट देर हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। और ऐसा कोई दिन नहीं होता था कि किसी-न-किसी मास्टर को देर न हो जाय। खुद हेडमास्टर साहब को ही कितनी बार ऐसे हाल से गुजरना पड़ा । बात यह थी कि स्कूल में जितने मास्टर थे—कहीं-न-कहीं से आते थे—मेरी ही तरह । किसी-किसी को तो रास्ते में एक-दो गाड़ी भी बदलनी पड़ती—और यदि किसी तरह जमदाहा जाने वाली यह पहली गाड़ी छूट जाए, तो समझिए घंटा भर देर होना ही होना है—चाहे आप पैदल जायें या फिर उसी गाड़ी के लौटने का फिर से इन्तजार करें । मन्टू यह सब बात नहीं जानता था, सो बात नहीं । फिर भी वह इन बातों को देर होने का कारण नहीं मानता । वह कहता—नौकरी का मतलब ही होता है—नौकर की तरह

बन कर रहना । यदि बाबू बन कर आना-जाना है, तो अपना कोई व्यवसाय करो, यह नौकरी करने की क्या जरूरत है । अब सरकार जब ठीक समय में आने-जाने और पढ़ाने का पैसा देती है, तो बाबू की तरह टहलते-बूलते, दस बजे के बदला ग्यारह-बारह में आओगे, तो नहीं न होगा ।''

यह बात मंटू सिर्फ जूनियर मास्टर को ही कह देता हो, ऐसी बात नहीं थी, किसी को कुछ नहीं समझता—क्या सिनियर और क्या हेडमास्टर । कोई उसका विरोध भी नहीं कर सकता—एक तो सभी अपनी गलती पर अन्दर-ही अन्दर खुद को हीन महसूस करते, दूसरा यह कि मंटू कभी भी स्कूल में देर से नहीं आता । स्कूल दस बजे लगता और मंटू पौने दस बजे आकर हाजिर । आकर स्कूल के चारो ओर घूमता—अहाता के एक-एक पेड़ को देखता, और किसी पेड़ की कोई डाल टूटी मिले तो उस दिन लड़का से लेकर मास्टर तक को उपदेश देने में लीन रहता, ''जब पेड़ की हिफाजत ही यहाँ मुश्किल है, तो स्कूल की पढ़ाई-लिखाई की क्या हिफाजत होगी.....इस स्कूल के मास्टर ही जब बारह बजे आएंगे, तो लड़कों को क्या, छुट्टी होने के बाद ही आते है तो क्या ।''

मंटू को किसी बात की जरा भी कहीं सुराग मिली तो वह सीधे मास्टर के देर से आने के विषय में उतर जाता । इससे एक फायदा हो जाता है कि मंटू को कोई क्लास-वलास लेने नहीं कहता । हेडमास्टर तक नहीं । बस मुझसे कह देते, ''जरा मंटू बाबू की क्लास ले लीजियेगा ।''

एक तो मंटू का, दूसरा हेडमास्टर साहब का आदेश, अपनी घंटी के साथ-साथ उसकी भी क्लास लेना मेरा उत्तरदायित्व बन गया था जैसे । लेकिन इससे इतना हुआ कि मंटू और जिससे जो कहे, मुझसे कुछ न कहता । एक तरह से मैं उसका दोस्त ही बन गया । यहाँ तक कि हमलोग तुम-ताम पर भी उतर आये । लेकिन जहाँ तक क्लास की बात थी, उसने घंटी लेने का भार तब भी वापस नहीं लिया ।

सारे मास्टर यह मान चुके थे कि उन्हें जब तक उस स्कूल में रहना है, मंटू की इस विषय में फुंफकार सुननी ही है ।

दस-ग्यारह बाँस के दूरी पर ही था मंटू का घर, जहाँ से वह पैदल ही चला आता ।

क्लास करने के लिए तो आता पौने दस बजे, लेकिन इससे पहले बिना नागा के सुबह एक बार जरूर स्कूल की ओर आता टहलने के बहाने । गाछ-वृक्ष की सुबह की हवा तन-मन को मजबूती देती है, यह सोच कर । अब जब दस-ग्यारह बाँस की दूरी पर ही मंटू का घर है तो टिफिन के वक्त वह टिकता कैसे, जलपान

के लिए घर की ओर बढ़ जाय और उस समय सारे टीचर इकट्ठा होकर मंटू के बारे में ही कोई-न-कोई शिकायत निकाल लेते । यह बात नहीं थी कि मैं उस मंडली से अलग था ।

बात क्या छुपी थी । यह काना-फूसी किसी-न-किसी तरह मंटू के कान में चली जाय और दूसरे दिन वह कोई-न-कोई बहाना निकाल कर वह सब दोहरा दे, जो मास्टरों के बीच में बीते दिन हुआ होता और आखिर में उपसंहार की तरह जरूर कहता, ''यह मत सोचिए कि आपसबों की शिकायत-षड़यंत्र से मैं यहाँ से खिसक जाऊँगा, हाँ आपलोग जरूर खिसक जाइयेगा, जिस दिन मैं चाह लूंगा ।'' यह उपसंहार सुनाते वक्त मंटू दोनों हाथों को ऊपर कर लेता और फिर बारी-बारी से एक-दूसरे हाथ से कुर्त्ता का हत्था बाँह तक ससार देता ।

जैसे इस दृश्य को ना देखने के मन से ही सारे मास्टर चॉक-डस्टर लेते हुए स्टाफ रूम से निकल जाते—घंटी लेने के बहाने से ।

....कौन-सा मास्टर ना होगो जो तंग ना आ गया होगा । कौन मन से चाहता कि क्लास ले ही । त्रिलोचन, भुवनेश्वर और त्रिवेणी तो एकदम परेशान हो गए थे । वैसे तो सब चाहते थे कि किसी दूसरे स्कूल में बदली हो जाए, लेकिन त्रिलोचन, भुवनेश्वर आदी तो इस काम के लिए शिक्षा-विभाग के पदाधिकारी और हेडक्लर्क को भारी घूस दे आए थे । दस-पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर भागलपुर भी दौड़-धूप कर आए, लेकिन सब बेकार—पैसे भी गए और परेशानी भी । यह तो भाग्य मनाइए कि कौन-सा तूफान उठा जो टीचरों की बदली एक जिले से दूसरे जिले में शुरू हो गई और त्रिवेणी आदि उस स्कूल से ऐसे भागे थे जैसे गौशाला से खुला बछड़ा उड़ा हो....।

उस दिन की बात याद आते ही विकास बंद होठों से मुस्कुरा पड़ा, कुछ इतने ही जोर से कि उसका पूरा देह-हाथ डोल पड़ा ।

''भला क्या सोचा होगा इस पान वाले ने, मुझे इस तरह मन-ही-मन हँसता देख'' यह सोच मैंने पानवाले की ओर देखा था, जो अभी तक वैसे ही फैली तलहथी पर ठुड्डी फंसा कर सड़क की ओर देख रहा था ।

मुझे अपनी ओर देखते देखा तो सीधा होते कहा, ''नहीं कसैली, तो लौंग, इलायची ही लीजिए । देख रहा हूँ कसैली के दोनों टुकड़े तो आपकी अंगुलियों के बीच में ही है ।'' और झट से उसने एक छोटी-सी डिबिया को खोल उससे इलायची निकाली, फिर छिलका उतार कर उसके दाने मेरी ओर बढ़ा दिये—बड़ी निष्ठा के साथ। ऐसा करते वक्त उसके बायें हाथ की उंगलियाँ दाँयें हाथ के बाँह पर आकर जम गई थी और मेरे दाने उठाने के बाद ही जो हटे थे । ''अचरज है, दस मिनट

बोला था, और अब तक नहीं आया ।'' मैंने यह बात दुकानदार को सुनाते हुए ही बोला था । सो उसने उत्तर में कहा, ''दस मिनट कहा है, तो साठ मिनट समझिए। कहने का ये माट साहब हों, लेकिन हैं ये पक्का नेता और आजकल वह टीचर ही क्या, जो नेता न हो । उस समय का जमाना थोड़े ही है, जब गुरु का मतलब गुरु होता होता था, आज गुरु का मतलब होता है—गुरु घंटाल ।'' इस बात को उसने थोड़ा दबी-दबी आवाज में कहा, लेकिन इतना साफ कि कोई भी सुन सके ।

''तो क्या, यह बात इसने मंटू को ही सामने रख कर बोला ?'' मैंने पानवाले की बात का उत्तर दिए बिना ही सोचा—झूठ भी तो नहीं बोल रहा है यह। नयी जगह में आते ही मंटू ने जो चाल चलनी शुरू कर दी थी, उससे बंधी व्यवस्था में जैसे उबाल आना शुरू हो गया था....छुट्टी होने के बाद, रोज किसी-न-किसी टीचर को साथ लेकर ही वह निकलता और उसे यह विश्वास दिलाए कि हेडमास्टर के इतने सवेरे आने का क्या माने है....वह कहता, ''मुझे भी मालूम है कि स्कूल का पैसा किस-किस फण्ड के नीचे दबा रहता है, और जिसके नीचे हेड के प्राण भी। यह तो भाग्य मनाइये कि मेरी गाड़ी देर से पहुँचती है, नहीं तो धन सहित प्राण उखाड़ कर रख दूँ ।''

यह क्या सिर्फ मंटू का ही विश्वास था, दूसरे मास्टरों का भी यही विश्वास था सालों से । मंटू ने सिर्फ उसे शब्द दिए थे—विरोध करने के । और फिर शुरू हुई बात से गाली तक की उठा-पटक । पढ़ाई-लिखाई तो वैसे भी नहीं ही होती । पहले मास्टर स्टाफ रूम में देश से लेकर दुनिया तक की राजनीति बतियाते, इससे फुर्सत मिलते ही वेतन, पेंशन, हड़ताल आदि पर....

अब मंटू के आने से सारे शिक्षक खुद में ही उलझ आए थे । लड़के तो तब भी मैदान में दिन भर फुटबॉल खेलते रहते और अब भी....लेकिन हेड भी कम बड़े खिलाड़ी नहीं थे....एक दिन मंटू नहीं आया था, हेड ने सभी टीचर को बुलाया और कहा—''मेरा कभी ट्रान्सफर हो सकता है ।'' जिसे जो सी.आर. मुझसे लिखवाना हो, लिखवा लें ।''

धनवन्तरी महाराज की जड़ी की तरह काम किया मास्टर साहब के इस कथन ने, और उसी दिन से सारे टीचरों ने मंटू का साथ छोड़ दिया था । मुझसे कई बार उसने इस तरह कन्नी कटाने का कारण जानना चाहा, लेकिन मेरा गोबध भी नहीं टूटता । बिल्कुल चुप्पी साध लेता ।

और फिर एक दिन अचानक ही एक तूफान । यह तो महीने भर बाद ही हमलोगों को मालूम हुआ कि तूफान हेड सर का उठाया हुआ था । लड़कों को यह कहकर सनका दिया कि वे तो यही चाहते हैं कि उन सबों का परीक्षा केन्द्र यही

स्कूल रहे, पटना तक पैरवी हो चुकी है, लेकिन नये सर मंटू इसका विरोध कर रहे हैं । चाहते हैं कि सेन्टर दूसरे जिले, दूसरे स्कूल में पड़े ।

हेडमास्टर का इतना कहना था कि उठ ही गया ना तूफान । लड़कों ने दिन भर सड़क जाम ही रखा । आस-पास के छोटे-मोटे दुकान की लूट-पाट हो गई। नारा, अलग ही ताबड़तोड़—सारे टीचर सच्चे हैं, मंटू टीचर लुच्चे हैं ।

शिक्षा पदाधिकारी आये, पुलिस आई । हेडमास्टर साहब दोनों को अपने रूम में ले गए । आधे घंटे तक बात-चीत चली और जब बाहर निकले तो चेहरा एकदम खिला-खिला लेकर, जिसे देखते ही लड़कों का विद्रोह भी आलोपित हो गया, और ठीक दूसरे दिन ही सबने जाना कि मंटू का तबादला हो गया । स्कूल छोड़ने का नोटिस भी तुरंत मिल गया था । यह सब इतनी जल्दी-जल्दी हुआ कि इसकी कल्पना मंटू तक को नहीं थी ।

''एक बात कहूँ माट साहब ?'' दुकानदार का प्रश्न सुनकर मैं चौंक उठा, ''हाँ बोलो।'' और गड़ी नजर से उसकी ओर देखा ।

''बुरा नहीं मानियेगा माट साहब ?'' फिर अपना दायां हाथ पूरब की ओर दिखाते हुए कहा, ''वह जो स्कूल है—मिसनरी वाला, वहाँ भी उतने टीचर नहीं होंगे, जितने आपके स्कूल में । एकाध तो कम ही होंगे, और मुझे तो मालूम हुआ है कि आपलोगों को जितनी तनख्वाह मिलती है, उसकी आधी भी नहीं मिलती—मिशनरी स्कूल के टीचरों को—एक चौथाई ही कहिए । और देखिए, क्या समय पर आते हैं, क्या समय पर जाते हैं, आज तक इस स्कूल के टीचरों को हड़ताल करते नहीं देखा आपलोगों की तरह, और आपलोगों को हड़ताल-आन्दोलन के नाम पर साल भर ठीक से विद्यालय करते नहीं देखा । इस दुकान पर तरह-तरह के टीचर आते हैं, यह तो कहना मुश्किल कि किस-किस स्कूल के वे सब टीचर हैं, लेकिन उन सब के खुल्लमखुल्ला बातों से सारी बातें समझ में तो आती ही हैं न । मुझे अभी भी याद है कि सिर्फ शनिचरा पैसा को ही अपना वेतन समझकर, हमलोगों को गुरु ने उतना ही ज्ञान दिया, जितना आपलोग महिनवारी पन्द्रह हजार रुपये लेकर भी नहीं दे सकते हैं । उन्हीं गुरु के मेरे तरह चेले के सामने आपके एम. ए., बी. ए. वाले चेले भी नहीं टिक सकते । झूठ नहीं बोल रहा....माट साहब बुरा नहीं मानियेगा, सरकारी स्कूल के टीचर से लेकर लड़कों का मन-मिजाज एकदम सरकारी आदमी की तरह ही । आदमी हताशा में अपने बच्चों को मिशनरी स्कूल में दे देते हैं—और जब अंग्रेजी, अंग्रेजियत फैलती है, तो उसके लिए भी चीखते-चिल्लाते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा बन्द हो । अपने पास त्याग का तो भाव ही नहीं रह गया । माट साहब, यह तो जानी बात ही है कि जहाँ पैसे पाने की हाही बढ़ जाय, वहाँ आदमी का ज्ञान

ही पहले बनिरयाता है । और ऐसे आदमी से देश-दुनिया का हित सोचना गू में घी डालना ही ।''

यह सारी बातें वह किसी सिद्ध साधू की तरह ही बोल गया, जो मुझे तीर की तरह लगा था । विरोध करते हुए कहा, ''तुम लोगों की इस ओछी सोच के पीछे दरअस्ल मास्टरों का बढ़ा वेतन है । तुम सब चाहते हो कि सारे मास्टर भिखमंगों की तरह जिएं तो बहुत बढ़िया, नेता-मंत्री पर उंगली तो उठा नहीं पाओगे ।''

कि तभी मंटू ने हुप से सामने आकर साईकिल रोक दी थी । वह जिस दिशा से गया था, उधर से ही ना आकर दुकान के ठीक पीछे वाले एकपैरिया रास्ते से साइकिल हांकता आया था । साइकिल रोकते कहा, ''बुरा ना मानना विकास, हेडमास्टर साहब से बात करने में कुछ देर हो गई, सारी बातें सलटानी जरूरी थी ।'' कहते-कहते ही उसने साइकिल को स्टैण्ड पर खड़ी की और नजदीक में ही बेंच पर बैठ गया । पानवाले को दो अंगुली दिखा कर दो खिल्ली पान देने का संकेत किया और फिर मुझसे कहने लगा, ''मेरे खिलाफ लड़कों को भड़का कर उस हेडमास्टर ने समझा था, कि उसने बाजी मार ली । चाहता तो बीच रास्ते में छेक कर...तब चलो, जो हुआ, अच्छा हुआ । यह स्कूल है भी एकदम अबहट्ट में—सड़क से चार मील दूर । किस पदाधिकारी का मन होगा कि धूल-गर्द फाँकते और गड्ढा-गुड्ढी पार कर स्कूल का इन्सपेक्शन करूँ । सड़क से ही पूछ-ताछ कर चले गये या हेडमास्टर साहब के घर पर आये और गये । लड़के तो पाँच सौ के करीब हैं, लेकिन सिर्फ रजिस्टर पर ही । पचास भी नहीं आते । हेडमास्टर लगा कर दस मास्टर हूँ । सबों की पारी बन्धी है । बस हफ्ते में तीन दिन आना है, तीन दिन की हाजरी जिस दिन आया, बना लिया । कोई हरहर-कचकच नहीं । सिर्फ जिस दिन वेतन उठाना रहता है, उस दिन स्कूल में सारे मास्टरों का मेला लगा रहता है ।'' और यह कहते-कहते उसने ठहाका लगा दिया था ।

मैंने चोर निगाहों से पानवाले की ओर देखा था, जिसके हाथ तो कत्था-चूना पर चल रहे थे, लेकिन उसके कान हम दोनों पर ही गड़े थे । मुझे लगा, जैसे वो मुझसे पूछ रहा हो, ''अब आपको क्या कहना है, माटसाहब ?''

जैसे एक कड़ा सवाल गुरु जी ने चटिया से पूछ दिया हो और मैं भक्क्। क्या जवाब देता ! बस उठा और मंटू से दोनों हाथ मिलाता साइकिल पर सवार हो गया । वैसे ही बहुत देर हो गई थी । पौने ग्यारह तो अभी ही बज रहे थे । जाते-जाते पन्द्रह मिनट और । तेज-तेज चलते स्कूल पहुँचा । खैर अभी कोई टीचर नहीं आए थे । लड़के उछल-कूद कर रहे थे और स्कूल का चपरासी बायें हाथ से घंटी को ऊपर उठाए दायें हाथ की छड़ी से टनटना रहा था—टन, टन, टन, टन, टन। ❐

माँ

''क्या माँ को यह मालूम नहीं है, कि किस तरह पिताजी के मरते ही बड़े बेटे ने माँ का भी बोरिया-बिस्तर बाँध दिया था और मुझसे कहा था, ''ले जाओ माँ को, जहाँ ले जाना है । माँ-बाप का कर्ज सिर्फ बड़े बेटे पर ही नहीं होता, छोटे पर भी होता है ।'' यह कहते-कहते मेरा गला रूँध गया, ''और आज देखो, माँ ने बड़े बेटे के ही घर जाने की जिद मचायी हुई है ।''

''जिद मचाने से ही क्या होगा, माँ को वहाँ नहीं जाने देना है । पचहत्तर की हुई, देह-हाथ की नसें वैसे ही दिखती हैं, उस पर आँख से लाचार । दिशा-मैदान के लिए बहियार जायेंगी, और नहाने के लिए भी उतनी ही दूर नदी पर—यदि कहीं कुछ हो गया तो लेनी की देनी । क्या होगा, एकाध दिन शोर ही न मचायेंगी । फिर समझ जायेंगी कि नहीं ले जाने वाला है, तो खुद ही चुप हो जायेंगी ।'' चावल चुनती शैलजा ने अपने सर को बिना उठाये ही कहा ।

''ठीक कहती हो'' मैंने कहा और माँ की ओर एक बार देखकर अपने कमरे में जा बैठा । एक केस के काम को जल्दी-जल्दी निपटाना था—यदि आज खाता पूरा नहीं होगा, तो यह पार्टी भी हाथ से निकलने ही वाली है, जिस प्रकार वह कल गुस्से में बोल कर गया है ।

अभी फाइल खोली भी नहीं होगी कि माँ उठकर मेरे कमरे में चली आई, ''दिलो क्या सोचा है—मेरे जाने के बारे में ?'' और बगल में ही रखे टेबुल पर बैठते हुए कहने लगी ''कितने दिनों से तुम लोगों को कह रही हूँ कि मुझे मुकुन्द के घर पहुँचा दो । तुम मेरे बेटे हो, तो वह भी मेरा बेटा है । साल भर हो गया; उनके उठने के बाद मुकुन्द का मुँह आज तक नहीं देख पायी हूँ ।''

मन तो यही हुआ कि कह दूँ, ''तुमको ही कौन-सा देखने आये हैं—पिताजी के मरने के बाद । तुम जिस बेटे को देखने के लिए बेकल हो रही हो, तुमको नहीं मालूम कि वे तुम्हें देखते ही कितने बेकल हो जायेंगे । कहीं दूसरे ही

दिन न कह दें, ''माँ, जानती ही हो कि यहाँ नहाने-धोने की कितनी दिक्कत है, तुम दिलो के पास रहती हो तो मुझे भी शांति मिलती है । शहर की बात अलग है, घर में ही पेशाब-पैखाने से लेकर नहाने-धोने की सारी व्यवस्था—उनके पास तुम्हें वहाँ से भगाने के सौ बहाने हैं ।''

शायद माँ को यह बताने के लिए ही कि मेरी तबीअत ठीक नहीं है, मैं अपने कपाल पर दाँया हाथ फेरने लगा, तो माँ ने कहा, ''देखो, तुम बहाना मत करो कि मेरी तबीअत ठीक नहीं है । और सभी तो काम करते ही हो, सिर्फ मुझे घर पहुँचाने के नाम से तुम्हारी तबीअत खराब हो जाती है या फिर कचहरी में काम बढ़ जाता है । यदि इतनी ही व्यस्तता है तो मुझे देवघर वाली गाड़ी पर बिठा दो । मैं अकेले ही चली जाऊँगी । संतनगर तक ही तो जाना है, गाड़ी द्वार से ही तो होकर जाती है ।''

माँ को पहली बार मैंने इस प्रकार बेकल देखा । अभी माँ को कुछ भी कहना ठीक नहीं होगा, यह सोचकर मैं चुप ही रहा । फाइल बन्द की और बाँयीं हथेली पर कपाल रखते हुए केहुनी को टेबुल पर टिका दिया तो माँ ने मेरे मन की बात जान ली, इसलिए बिना कुछ बोले ही उठी और अपने कमरे में जाकर बैठ गई।

शैलजा आई और चाय की प्याली को मेरे सामने रख दिया । कुछ बोली नहीं । माँ के कमरे में भी गई और वहाँ भी उसके सामने चाय रख कर रसोईघर लौट गई ।

घर में जब भी माँ के जाने की बात उठती है, कुछ देर के लिए माहौल सनसनाता है, फिर पहले की भाँति व्यवस्थित हो जाता है । लेकिन आज वैसी बात नहीं हुई । माँ ने जो कुछ कहा, उसमें गुस्से का रंग था, जिसे मैंने ही नहीं, रसोईघर में चाय बनाती शैलजा ने भी सुना था । यही कारण था कि वह माँ के आगे चाय रखकर बाहर निकल आयी थी—बिना कुछ बोले ही । नहीं तो चाय रखते हुए इतना तो जरूर बोलती, ''माँ जी, चाय जल्दी ले लेंगी, नहीं तो ठंडी हो जायेगी ।''

माँ को चाय पीने की बहुत आदत है, लेकिन चाय जब तक पूरी ठंडी न हो जाय, तब तक ओठों से नहीं सटाती । चाय पर जब गाढ़ी लाल पपड़ी दूध की छाली की तरह जम जाती, तब माँ उसे उठाती । पूरा घर जानता है कि माँ को सिर्फ मीठा चाहिए—चाय-वाय से कुछ मतलब नहीं । लेकिन शैलजा को यह बात बिल्कुल नागवार लगती । इसलिए चाय रखते ही कहती, ''पानी बना कर नहीं पीयेंगी ।'' तब माँ हँस कर प्याली उठाती और शैलजा का मन रखने के लिए ही ओठों से लगा कर तुरन्त रख भी देती । शैलजा को मालूम है, अब माँ इसे तभी ओठों से लगाएंगी, जब चाय ठंडी होकर कजली रंग की तरह हो जायेगी ।

आज शैलजा का उस प्रकार चाय रखकर निकल जाना माँ को भी अखरा होगा, मैं जानता हूँ, लेकिन वह बोली कुछ नहीं । बस अपने गुस्से को जाहिर करने के लिए उसने प्याली हटा कर एक तरफ कर दी ।

मैं समझ गया, अब, अभी घर में रहना मुश्किल । ना शैलजा कुछ बोलेगी, और न माँ ही । बच्चे सहमे-सिमटे इधर-उधर छुपते फिरेंगे, सो अलग । कितने दिनों से बीनू, मंटू और तुलसी देख रहे हैं—जब-जब दादी कुछ बोलती है—माँ-पिताजी दोनों दिन भर अनखन ही बने रहते हैं और ऐसे में किस समय किसे डाँट पड़ जायेगी और किसे मार—यह कहना मुश्किल था ।

कुछ सोचा और चाय सुड़क कर कमीज-फुलपैंट की मांग की, तो शैलजा रसोईघर से नहीं निकली । यह बात नहीं थी, कि मेरी आवाज उस तक नहीं पहुँची थी, लेकिन सुन कर भी टाल दिया ।

—क्या करेगी आ कर । कौन-सा मैं उसकी बातों का ख्याल रखता हूँ । कहती—बाहर जा रहे हैं, तो खा-पी लीजिए, अब कब लौटियेगा, नहीं लौटियेगा, मैं भी निश्चिंत रहूंगी । नहीं तो मन में लगा ही रहेगा कि.....

और शैलजा के इतना कहने पर भी क्या होता—बस वह बोलती रहती, मैं कपड़ा पहनकर बाहर निकल जाता । और जब भी ऐसा हुआ है, शैलजा भूखी ही रह गयी है—दिन भर । किसी-न-किसी के मुँह से यह बात मालूम हो ही जाती है।

''तुलसी, कमीज-फुलपैंट देना !'' बेटी को आवाज दी तो वह झट से ले आई और बिना नजर मिलाए उसी टेबुल पर रख लौट गई, जिस टेबुल पर कुछ समय पहले माँ बैठी थी । मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि अभी बच्चे भी यही चाहते होंगे कि किसी प्रकार पिताजी घर से बाहर निकल जायें तो अच्छा । माँ-दादी का ऐसा गुस्सा तो बच्चों को सहने की जैसे आदत-सी हो गई थी । बाहर निकलने से पहले मैंने अपनी आवाज को तेज करते हुए कहा, ''बिनू, माँ से कह देना—दादी को ठीक समय पर खिलाकर खुद भी खा लेगी । मेरा कोई ठिकाना नहीं—शाम में भी लौट सकता हूँ । यदि ग्यारह बजे तक नहीं आया तो समझ लेना—मैंने किसी होटल में खाना खा लिया है ।''

घर से निकलते वक्त न शैलजा ने टोका और न ही माँ ने ।

००

आखिर कितना चक्कर मारता । घन्टे भर पहले ही कचहरी पहुँच गया। बिल्कुल खाली हाता । केस-मुकदमा लड़ने वालों की आवा-जाही तो दो घन्टे बाद ही होगी । हाँ, रोज की तरह हरिचन्द्र अपने टाइपराइटर पर अंगुली जरूर-ही चला

रहा था । कल का बचा काम दूसरे दिन पहले ही आकर निपटा लेता है—हरिचन्द्र। दस आदमी का परिवार चलाता है—वो भी एक टाइपराइटर पर । कचहरी बन्द होने के बाद भी एक घंटे तक खुटखुटाता रहता है । उसे कोई मतलब नहीं—कोई कुछ बोले, न बोले ।

मुझे लगा, मुझसे दस गुना अच्छा है—हरिचन्द्र । दो सौ रुपये से कम एक भी दिन नहीं कमाता होगा । किसी-किसी दिन तो तीन सौ भी और यहाँ तो पचास-सौ पुराते-पुराते ही परेशान । वकील बन जाने से ही क्या होता है और पाँच डिगरी लेने से ही क्या ध पत्थ का काम करता है तो पुराना चावल ही । जो जितना पुराना वकील, उतना ही नामी । नामी होने के लिए उसे और बीस-तीस सीनियर वकील की पूँछ पकड़े रहनी ही पड़ेगी । दिन भर तिमिरदारी किजिए तो आखरी समय में हाथ में पचास रुपये इस प्रकार थमायेंगे, जैसे जमीन्दारी का कोई पट्टा थमाते हों । अब क्या बताऊँ कि इस आरती के पैसे से जब खैनी का जुगाड़ तक मुश्किल होता है, तो परिवार कहाँ से चलेगा । .....माँ को यदि पेंशन न मिलता होता, तो न जाने मेरा क्या हाल होता । वह तो महीना पुरते ही माँ को छः सौ रुपये मिल जाते हैं, तो याद भी नहीं आता कि हम सब किराये के मकान में रहते हैं । माँ भी सारी बातें समझती है—तभी तो एक तारीख आते ही शैलजा के साथ बैंक से रुपये ले आती है और बाहर-ही-बाहर मकान मालिक के हाथ में किराया थमा देती है । कोई तगादा करने द्वार तक आए—माँ को यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं ।

—''और जब माँ देवघर चली जायेगी तब.....'' अकस्मात् ही मेरे मन में विचलित कर देने वाला तूफान उठा था—तब किराया ठीक समय पर कैसे चुकाऊँगा । मान लेता हूँ कि महीना भर के लिए मकान मालिक ठहर भी जाता है, परन्तु यह तो जरूरी नहीं कि महीना भर के बाद माँ लौट ही आयेगी । जा रही है तो लौटने, नहीं लौटने की बात उसके मन पर है । और यह तो हो नहीं सकता कि मालिक दूसरे महीने की एक तारीख को बिना दोनों महीने का किराया लिए मुक्ति दे दे.....आज है बीस तारीख, यदि माँ जिद ठान ही लेती है, तो कल नहीं तो परसों उसे पहुँचाना ही पड़ेगा.....पिछले महीने से जिद कर रही है, वह तो मैं तीन दिनों तक बीमारी का बहाना कर बिछावन पर पड़ा रहा, तो माँ ने जाने के नाम पर अपना मुँह बन्द कर लिया.....एकदम चादर तान कर सोया ही रह गया था मैं । शैलजा भी परेशान रही—न देह-हाथ गर्म है और न ही कँपकँपी । हो सकता है—देह-हाथ में ऐंठन हो या फिर सरदर्द—इसी कारण लेटे रहते हैं । और माँ अपने बिछावन पर बैठे-बैठे बात को समझने की कोशिश करती, आखिर मुझे हुआ क्या है ? माँ को मालूम है—पिताजी के मरने के ठीक सोलह दिन बाद ही, मेरे पेट में दर्द उठा था,

तो पूरे दस दिन तक सम्पूर्ण घर को उधिया दिया था; पिताजी के मरने का दुख जैसे खत्म ही हो गया था । शायद वही याद कर, जब मैंने बिछावन पकड़ा, तो माँ का चेहरा तीनों दिन बुझा-बुझा-सा ही रहा । शैलजा जैसे ही मेरे कमरे से निकलती कि माँ अपनी आँखों पर मोटे शीशे का चश्मा लगाकर बैठे-बैठे ही उसके चेहरे के भाव को समझने की कोशिश करती—कहीं तबीअत ज्यादा तो खराब नहीं है ।

.....उस दिन शैलजा जैसे ही मेरे कमरे से निकल कर माँ के पास गई, माँ ने बड़ी तेजी से साड़ी के आँचल से अपने चश्मे के शीशे को बारी-बारी से पोछकर आँख पर चढ़ाया और उसके चेहरे को बहुत ध्यान से देखा, जैसे शैलजा के चेहरे पर मेरी तबीअत का उतार-चढ़ाव लिखा हो । मुझे हँसी आ गई । माँ देख नहीं पाती—सौ बार कहा होगा—माँ ठण्ड आ गई, इस बार मोतियाबिन्द का ऑपरेशन करवा लो—लेकिन उसकी तो बस एक ही जिद—"मेरे लिए तो दोनों बेटे—दो आँखें। बेटा, अब तो तुम्हीं लोग मेरे आँख हो । ये आँखें रहे या चली जाएं, क्या फर्क पड़ता है ।"

"क्या बात है दिलीप जी, आज इतने सवेरे-सवेरे ? आपकी कचहरी तो दस-ग्यारह बजे के बाद जमती है ।" हरिचन्द्र ने टाइप मशीन पर अपनी अंगुली को बिना रोके ही, मेरी ओर देखते हुए कहा, "गृहयुद्ध से लौटे हैं क्या ?"

कहते-कहते हँसने लगा हरिचन्द्र । पान से काले हुए उसके बत्तीसो दाँत अचानक ही दिखने लगे । काली देह पर काले रंग का कपड़ा सालो भर चढ़ाये हुए हरिचन्द्र बारहो घंटा पान चबाता रहता है—इसी कारण वह बोलता-हँसता नहीं के बराबर है, जब इसके बिना काम ही न चले, तभी वह हँसता-बोलता है । और जब भी हँसता है, तो सामने वाले की कमीज तथा टाइपरायटर पर रखा कागज छींटदार होना ही है । जैसे मुँह नहीं—फुहारा हो ।

मैंने देखा उसकी हँसी अचानक ही रुक गई है । मतलब साफ था कि मशीन से लगा कागज कुछ ज्यादा ही रंग गया होगा । मुझे भी हँसी आ गई । कौन-सा ऐसा ग्राहक नहीं होगा जो इस कारण हरिचन्द्र से उलझता नहीं होगा और फिर नर्म भी नहीं पड़ जाता होगा । उपाय भी क्या है—हरिचन्द्र अकेला आदमी है, जो हिन्दी टाइप करता है, नहीं नरमायेगा तो कल से काम भी नहीं होगा । मेरे मन में आया, यदि मैं भी हिन्दी टाइप करना जानता तो मेरी स्थिति कुछ और ही होती।

मन एकदम से उचाट हो गया । जरूर मेरा चेहरा इतना उदास होगा कि जो भी देखे, वही टोके । मैं उठा और हरिचन्द्र को बिना कुछ जवाब दिए सड़क पर आ गया । मन हुआ कि जयप्रकाश उद्यान चला जाऊँ । कितनी बार तो वहीं रह कर दिन काट दिया है—मन उदास होने पर ।

लेकिन ऐसा चाहते हुए भी, मैं उधर जाने के बदले अपने घर की ओर मुड़ गया—पता नहीं, घर में किस प्रकार का कुहराम मचता होगा, उसके भूखे चले आने पर । यदि माँ ने भी कौर नहीं उठाया होगा तो और भी परेशानी । कितनी बार ऐसा हो भी चुका है । अब माँ नहीं खायेगी तो शैलजा कैसे खायेगी । और जब दोनों भूखी हो तो तुलसी, बीनू आदि के कंठ से कितना कौर नीचे जायेगा । बस उस दिन समूचे घर का उपवास.....जब उपवास की नौबत सचमुच में ही आ जाए तब ? .....आयेगा तो देखा जाएगा, ऐसा दिन आया नहीं है क्या ? मैं किसी प्रकार भी नहीं भूल सकता वह दिन—सप्ताह भर की बंदी हो गई थी...बीच कचहरी में नामी वकील वीरू बाबू को किस तरह गुण्डों ने भरनांटी दिखा दी । ऐसी बंदी हुई की कचहरी में भंक लोटने लगा, तब केस-मुकदमा लड़ने वालों की दूर तक छाया भी नहीं दिखती थी। पैसा लाता कहाँ से? एक शाम खाना चलता तो एक शाम उपवास।

यदि सुख का दिन आ गया, तो भी वह दिन कैसे भूल सकता हूँ—सड़क के किनारे गोलगप्पे का खड़ा ठेला । पाँच-छः खाने वाले का घेरा पांत। ठेला वाला देता जाता और खाने वाले मुँह में देते जाते । उसने दूर से ही देख लिया था—बीनू-मिन्टू ठेले से थोड़ी दूर पर खड़े हैं । उनकी नजरें गोलगप्पे के निकालने और उठाने के साथ-साथ उठ गिर रही हैं । मुझे देखते ही दोनों पतंगे की तरह उड़ते हुए घर में छुप गये थे—मार के डर से.....मैं उन्हें मारता क्या, खुद ही मर गया था—जो बाप अपने बच्चों को ठीक से दो शाम का भोजन नहीं दे सकता, उसे पिता बनने का क्या अधिकार । सौ बच्चों की हत्या से भी बड़ा पाप है—एक बच्चे को भूखे रख कर पिता बनना ।

गोलगप्पे वाली बात याद आते ही मैं एकदम व्याकुल हो उठता हूँ । चाहता हूँ—बात को किसी प्रकार भुला दूँ, लेकिन वह तो तेलाये कपड़े पर जमी धूल के समान उतरती ही नहीं, जब तक कोई जबरदस्त बात सामने न आ जाए ।

००

''अरे दिलो, आज इतनी जल्दी । आज कचहरी नहीं है क्या ?'' द्वार पर पैर रखते ही मौसी ने टोका था ।

''अरे मौसी ।'' मैंने भी अपने चेहरे पर बनावटी हँसी लाते हुए कहा, ''कब आयी? मुझे तो फुर्सत ही नहीं मिलती कि तुमसे भेंट-मुलाकात भी हो सके । कचहरी के काम से मुक्ति ही नहीं मिलती । और घर पर भी उसी हलफनामा-तलफनामा से उलझते रहो । लेकिन तुम भी तो इधर कदम नहीं ही रखती हो—जब तक कोई भारी काम नहीं आ जाए । क्या झूठ बोल रहा हूँ ?''

''नहीं, झूठ तो नहीं बोल रहे हो । क्या करूँ, नौकरी जोगने में साँस भी लेने की फुर्सत नहीं । हाय-हाय करते हुए सुबह उठो, चौका-चुल्हा करो, बच्चों को खिलाओ, और फिर घर लौटो तो वही माया ।'' मौसी, जो द्वार के बरामदे पर बिछे खाट पर बैठी थी, थोड़ा खिसक कर उन्होने मेरे लिए जगह बनाई और उसी जगह को दो-तीन बार थपथपाते हुए मुझे बैठने का ईशारा किया ।

जब मैं उसी स्थान पर बैठ गया तो मौसी ने कहा, ''तुमने ठीक ही कहा, मौसी बिना किसी काम के इधर आ ही नहीं सकती । आज भी काम के लिए ही आयी हूँ'' और फिर मेरे कुछ कहने से पहले ही कहना शुरू कर दिया, ''यह कहती हूँ, तुम माँ को देवघर क्यों नहीं पहुँचा देते ? अब माँ का औरदा ही कितना दिन? जब तक जिन्दा है, जो चाहती है, पूरा कर दिया करो । तुम्हारे पिताजी नहीं रहे तो क्या, उनकी पूरी-पूरी जिंदगी तो वहीं बीती । अब जिस जगह से तुम्हारे पिता की ठठरी उठी, उस स्थान के प्रति तुम्हारी माँ का मोह-माया तो होगा ही न बेटे । माँ पैसे-वैसे तो नहीं मांगती, वह तो तुम्हारे पिता ने दीदी की बची जिंदगी को चलाने लायक अपने पेंशन से व्यवस्था कर ही दी है । अब बचा—लाने और पहुँचाने का । वह तो तुम्हीं दोनों भाइयों को न करना पड़ेगा । जानते ही हो, माँ को दिखाई नहीं देता । यदि दिखाई भी देता, तो भी क्या ? दीदी को देश-दुनिया के बारे में क्या मालूम ? तुम्हारे पिता ने कभी भी द्वार से बाहर तो निकलने नहीं दिया । शादी के बाद लौटकर नैहर नहीं देखा दीदी ने । देखी है ऐसी मिडिल पास लड़की या औरत, जैसी दीदी है ? जब तुम्हारी माँ के लिए दहलीज के बाहर अन्धकार ही अन्धकार है, तब तो तुम्हें समय निकालना ही पड़ेगा । कौन-सा कंधे पर बंघी रखकर तीर्थ-वैराग कराने के लिए माँ कह रही है, बस देवघर तक ही तो पहुँचाने की बात है । सुबह जाओगे तो शाम तक लौट आओगे ।'' मौसी यह सब बातें एक ही साँस में बोल गई ।

''मौसी, तुम समझती नहीं हो, यह बात थोड़े ही है कि मैं माँ को देवघर पहुँचाना नहीं चाहता । तुम समझती क्यों नहीं हो—माँ का अब आँख-कान तो रहा नहीं । अब उतनी ताकत भी नहीं रही कि अपनी साड़ी भी थपकार सके; कुआँ से पानी खींचने की बात छोड़ ही दो—जब यहाँ चापानल की हैंडिल तक उठा-बैठा नहीं पाती है । यहाँ है तो छोटी बहु सेवा कर देती है, वहाँ कौन-सी नौकरानी बैठी है—माँ को झाँकने वाली भी ।''

मैंने यह बातें गुस्साए मन से कही ।

मुझे यह समझने में थोड़ी भी देर नहीं लगी थी कि मेरे घर से निकलते ही माँ मौसी के घर पहुँच गई होगी और पूरी बात बता दी होगी । दस घर के बाद

ही तो मौसी का घर है । शैलजा ने खुद ही दो-तीन बार माँ के साथ जाकर माँ को मौसी के घर तक जाने वाले रास्ते की पहचान करा दी थी । अब माँ अकेले ही जब हुआ, मौसी के घर पहुँच गई । तो आज पंचैती करने के लिए माँ मौसी को बुला लाई थी ।

''देखो बेटा, वहाँ दीदी को कोई देखनेवाला है, या नहीं है, अब इस बात को लेकर तुम माँ को जाने से मत रोको । यदि कोई नहीं भी है तो बड़ा बेटा तो है ही ।''

''मौसी, नहीं जानती हो कि तुम जहाँ माँ को ले जाने के लिए कह रही हो, वहीं पर से माँ.....।

''छोड़ो-छोड़ो इन सब बातों को ।'' मौसी बीच में ही मेरी बात को काटते हुए बोली, ''वैसे भी, माँ तो बेटे के सभी दुर्व्यवहार को पचाने के लिए ही होती है । तुम्हीं ने क्या बचपन में माँ को कम सताया है । एक दिन गेंद के लिए तुम्हें दो टाका नहीं दिया तो माँ को कैसे पीटा था तुमने, जैसे कोई बड़ा किसी बच्चे को भी नहीं पीटता। दीदी ने सर झुका कर तुम्हारी मार को सह लिया था, न ही अपना मुँह खराब किया और न ही अपना हाथ । अब बड़ा बेटा जो भी करेगा, इससे बढ़ कर तो नहीं ही करेगा न ।''

मौसी कहीं से गुस्से में थी । लेकिन उसके गुस्से से कहीं ज्यादा उसकी बात मुझे लग गई । बिल्कुल चुप हो गया । मेरा चेहरा उतर गया । जैसे किसी ने पानी डाल कर आग बुझा दी थी । मैं पासी पर दोनों हाथ का बल देकर उठना ही चाह रहा था कि उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, ''दिलो, माँ को कल सुबह जरूर-ही देवघर पहुँचा दो । भाई और गाय के सिंघ भले ही जन्म से अलग हों, पर माँ का मन और कोख कभी भी बंटे नहीं रहते हैं । फिर कौन-सा माँ सारी उम्र काटने जा रही है, महीना पूरा होते-न-होते देखना, यहाँ आने के लिए धड़पड़ करने लगेगी । मैं जा रही हूँ दिलो; देखना, माँ का मन कलपित्ता न हो ।''

मेरे मुँह से बोल न फूटे । मौसी उठ कर बाहर निकल गई । माँ अपने कमरे में बैठी सारी बातें सुन रही थी और शैलजा शायद रसोईघर में होगी, इसलिए मौसी के जाने के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं हुई । और मेरा तो मन ही इतना टूट गया कि मौसी को रोकने के लिए न मुँह खुला, और न हाथ ही बढ़े ।

वह दिन मुरझाया-मुरझाया-सा रहा । उसी माहौल में आधी रात के बाद मेरी और शैलजा की बात हुई थी, जब माँ के साथ बच्चे भी सो गए । मेरा यह सोचना गलत था कि शैलजा ने मौसी की बातें नहीं सुनी होगी । जब मौसी बोल रही थी, उस समय वह चावल चुनने के बहाने से आंगन में ही बैठी थी । इसलिए शैलजा ने ही सभी प्रकार से सोच-विचार कर कहा, ''यदि माँ यही चाहतीं हैं, तो आप उनको

पहुँचा आइए—जो होगा, देखा जायेगा ।''

''तुम बिल्कुल ठीक कहती हो । मैंने भी सोच लिया है, सुबह की गाड़ी पकड़कर ही माँ को देवघर पहुँचा आऊँगा । माँ ने कहीं यह तो नहीं सोच लिया है कि उससे ही मेरी सारी मुसीबत टलती है । रहे बड़े बेटे के घर, बड़ा बेटा ही आग देगा ।''

और सुबह होते-न-होते शैलजा ने माँ को जगा दिया ।

देवघर जाने की बात सुनते ही माँ ने झट-पट अपने कपड़े एक प्लास्टिक की थैली में समेट लिये । शैलजा सफर के नाश्ते के लिए रसोई में घुस गई थी ।

भुरकवा उगने पर था । गाड़ी ठीक पाँच बजे है—मैंने देखा, अपनी थैली उठाने से पहले माँ ने बिनू, मिंटू और तुलसी की गाल को एकेक कर चूमा था ।

मेरी तरह माँ भी रास्ते भर चुप ही रही । गाड़ी पर चढ़ते वक्त चेहरे पर जो चमक दिखाई दी थी, वह अचानक ही गाड़ी के खुलने पर अलोपित हो गई थी। बीच-बीच में माँ मेरी ओर आँखें करती—शायद कुछ कहना चाहती थी, लेकिन मेरी नजर ड्रायवर की ओर ही तनी रही ।

गाड़ी घर के द्वार से ही होकर देवघर के बस स्टैण्ड पर पहुँचती है । कन्डक्टर को पहले ही बता दिया था, इसलिए द्वार पर ही गाड़ी रूकी । सामान ही क्या था—बस एक थैली, उसे लेकर माँ के साथ नीचे उतर आया । तेजी से थैली को द्वार पर रखा और दौड़ कर गाड़ी पकड़ ली । गाड़ी जाने को हुई तो माँ की ओर नजर घुमाई—माँ के दोनों हाथ आशीर्वाद देने के लिए ऊपर उठे थे ।

दोपहर के दो बजते होंगे, जिस समय मैं घर लौटा । बिनू, मिंटू और तुलसी स्कूल में होंगे—यह जानी हुई बात थी । शैलजा द्वार पर ही मेरे इन्तजार में खड़ी थी।

द्वार पर पैर रखते हुए मैंने अनमने ढंग से सूचना दी, ''पहुँचा आया, बड़े बेटे को ही पाले—छाया भी घने वृक्ष को ही मिलती है, ठूंठ को नहीं.....'' कि अचानक ही अकचकाते हुए खड़ी शैलजा से पूछा, ''अरे यह चेकबुक तुम्हारे हाथों में ?.... लगता है माँ हड़बड़ी में लेना भूल गई । अब इसे पहुँचाने के लिए फिर देवघर दौड़ो।''

मैंने देखा, मेरी बात सुनते ही शैलजा की आँखें डबडबा आयीं । उसने कहा, ''यह बात नहीं है, जाते समय माँ ने इसे मेरे हाथों में थमा दिया, यह कहते हुए कि वैसे तो तीन महीने भी नहीं रहूँगी, तब माँ की ममता.....वह कहे तो रुकना भी पड़े । तुम घर का ख्याल रखना । यह चेकबुक है । सभी पन्नों में दस्तखत कर दिया है । वैसे तो इतने-से पैसों से होता ही क्या है—फिर भी.....।''

शैलजा माँ की एकेक बात सुना रही थी और मेरी आँखों के सामने दोनों हाथ उठाए माँ फिर खड़ी हो गई थी । ❐

कहानी की कोख

स्टेशन पहुँचने पर सतेन्द्र को पता चला कि विक्रमशिला आने में अभी दो घण्टे देर है । उसका मन एकदम से भिन्ना गया, लेकिन अब वह कर भी क्या सकता था । इस संकट को टाला भी जा सकता था, यदि उसने घर से ही गाड़ी के आने की जानकारी ले ली होती । घर का टेलिफोन खराब था तो क्या, बूथ ही कितना दूर था—घर के द्वार पर ही तो । लेकिन ठीक समय पर ही उसकी बुद्धि एकदम से सठिया जाती है । अब स्टेशन पर इधर-उधर चक्कर मारो, और देखते रहो उल्लू की तरह सवारी और रेल के डब्बे को । कि अचानक ही उसे क्षेम सुमन की याद आयी।

स्टेशन के ठीक उस पार के मुहल्ले में रहता है क्षेम सुमन, रिटायर होने के बाद तो क्षेम कहीं बाहर भी नहीं निकलता है—सतेन्द्र ने मन-ही-मन सोचा था, होगा तो घर में ही । अगर नहीं भी होगा तो उसकी पत्नी सपना तो जरूर ही घर में होगी । तभी उसके मन में यह विचार भी आया कि यदि क्षेम घर में नहीं होगा और सपना होगी भी तो इससे हो ही क्या जाता है ? ज्यादा-से-ज्यादा सपना एक-दो मिनट के लिए उसके पास बैठेगी, फिर घर के इस-उस काम के लिए वह परेशान-परेशान हो जायेगी । नौकर भी रखा है क्षेम ने, लेकिन वह रसोई का एक भी काम नहीं कर सकता । सभी काम सपना को ही करने पड़ते हैं, यदि क्षेम को किसी तरह मालूम हो जाए कि नौकर ने आलू काटा है या चावल धोया है तो उस दिन क्षेम उपवास पर ही रहेगा । खाना तो खाना, घर के कपड़े भी नहीं छू सकता वह नौकर । नौकर केवल बाजार से सामान लाने के लिए है और बगीचे के फूल-पौधों की रखवाली के लिए । बाकी काम तो सपना को ही तितली की भांति उड़-उड़ कर देखना पड़ता है.....ऐसी हालत में वहाँ बैठना तो मुश्किल ही है । फिर सतेन्द्र के मन में यह विचार आया कि क्षेम यदि बाहर जाता भी है तो मात्र चार-पाँच मिनट के लिए । यदि वह इधर-उधर गया भी होगा तो इस बीच में लौट ही आयेगा.... और फिर कौन-सा मैं वहाँ रात बिताने के लिए जा रहा हूँ । घन्टे-दो-घन्टे की ही

तो बात है । फिर मकान ही कितनी दूर है, नहीं होगा तो लौट जाऊँगा । आने-जाने में कुछ वक्त तो ऐसे ही कट जायेगा । स्टेशन पर बोर होने से तो यही बेहतर है।

द्वार पर पहुँचकर सतेन्द्र ने जैसे ही कुंडी खटखटाई, तो द्वार क्षेम ने ही खोला था । दोनों के चेहरे पर एक खिली हुई मुस्कान उभर आई थी ।

''आओ सतेन्द्र आओ, अब तो इधर आना-जाना ही छोड़ दिए हो, क्या कोई नया रोजगार फिर से पकड़ लिया है ?''

''धत्, नया रोजगार और इस शहर में ! हाँ एक अखबार में लिखना शुरू कर दिया है ।'' कहते हुए सतेन्द्र जब कमरे के अन्दर पहुँच गया तो क्षेम ने दरवाजे को सटा दिया ।

''सुनती हो, सतेन्द्र आया है, अब तो भई, यह बड़ा आदमी हो गया है । अखबार में लिखना क्या आसान काम है ।'' यह कहते-कहते क्षेम गद्दे वाली लम्बी कुर्सी पर अपने दोनों हाथों को फैलाकर बैठ गया था, जैसे कोई बड़ा पक्षी पंखों को फैला कर आकाश में उड़ने ही वाला हो । तब तक सतेन्द्र वहीं पर रखी एक गद्दे वाली कुर्सी पर बैठ गया था ।

''क्या कहा तुमने, अखबार में लिखना शुरू किया है....'' और यह कह कर वह हँसने लगा था ।

हँसी में छिपे उस उपहास को सतेन्द्र साफ-साफ समझ रहा था, लेकिन वह यह भी जानता है—कि क्षेम की यह पुरानी आदत है । फिर भी उसकी बात सुन कर वह मनझमान हो गया था । कि तभी सपना ट्रे में तीन कप चाय लेकर आ गई थी और मुस्कराते हुए कहा था, ''अब आयेगा चाय का मजा । चाय के समय कोई लेखक-कवि सामने में हो तो चाय का मजा ही कुछ और होता है ।''

इस बात पर सतेन्द्र का चेहरा अचानक ही खिल उठा था । और उसने कहा था, ''यह बात नहीं है, चाय का मजा तो इस बात पर निर्भर करता है कि साथ देने वाला कौन है ।''

सतेन्द्र ने यह बात शायद क्षेम को सुनाते हुए ही कही थी, इसलिए उसने यह कहकर उसकी तरफ देखा था । लेकिन क्षेम ने उसकी बात नहीं सुनी थी । वह तो हाथ में बिल्कुल छोटे से नाव नुमा रिमोट से टी. वी. के सीरियलों को जल्दी-जल्दी बदल रहा था—जैसे उसे कोई सीरियल पसन्द ही न हो—सब बेकार ।

उस समय क्षेम सचमुच ही काफी खिला हुआ दिख रहा था—शायद तुरन्त स्नान कर आया था । खुले बदन पर सुगन्धयुक्त पाउडर, जो गले से शुरू होकर छाती तक जाते हुए हल्का हो गया था । फिर गले में स्फटिक पत्थर की माला के साथ छोटे दाने वाली रुद्राक्ष माला, जो चाँदी के तार और दाने से गुथी हुई थी—बहुत

शोभ रहा था क्षेम ।

सतेन्द्र की आँखें अनायास ही घूम कर सपना पर लौट आईं थीं ।

भारी उमस के बावजूद, शायद सपना को स्नान का मौका नहीं मिल पाया था । यदि उसने स्नान किया होता तो उसके बाल समेटे हुए होते, साड़ी पर बहुत सारे सिलवटें ना होतीं, तब चाय लाने के क्रम में कुछ ज्यादा ही सावधान होती कि कहीं आँचल कंधा से ज्यादा न ससरे और तब वह इस प्रकार बैठती भी नहीं जैसे अभी पलंग पर दोनों पैरों को मोड़ कर बैठ गई है ।

''अजी, क्या यह अच्छा लग रहा है कि आपके दोस्त आए हैं और आप टी. वी. के सीरियल बदलने में मग्न हैं ।''

क्षेम ने सपना की इस बात पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई थी, जैसे इस बात का कोई मतलब ही न हो । वह पहले की तरह ही रिमोट से सीरियल बदलता रहा । फिर उसने सतेन्द्र की ओर घूमकर कहा, ''देख रहे हो, कैसी साफ-साफ तस्वीर उतरती है । इस रंगीन टी. वी. का पुर्जा-पुर्जा विदेश का बना हुआ है । बहुत शौक से महीने भर पहले ही खरीदा है ।''

क्षेम ने अपनी बात कहने तक ही सिर इधर घुमाया था, फिर उसी सीरियल की तरफ । अब वह ऐसे सीरियलों को बार-बार उतार रहा था, जिसे नंगा नाच नहीं भी कहा जाय, तो भी वह नंगा नाच की तरह ही था ।

''देख रहे हैं न, यही आपके मित्र की पसन्द है और यदि मना भी करो तो कोई असर पड़ने वाला नहीं । संगति का असर हुआ है ।''

क्षेम को जैसे अचानक ही करेण्ट लग गया हो । उसने घूरते हुए सपना को देखा था, लेकिन कहा कुछ नहीं । सिर्फ चेहरे को फिर से टी. वी की ओर कर लिया था ।

एक अजीब तरह का तनाव कमरे में अचानक ही पसर गया था, जो न तो मुझसे छुपा था और न ही किसी और से । शायद, माहौल को हल्का बनाने की कोशिश में ही मैंने सपना की ओर मुड़ते हुए कहा था, ''हाँ, आपको तो एक बात बताना ही भूल गया, मैंने आप पर एक कहानी लिखी है.....याद है न, पहली बार मैं जब आपके घर आया था, और आपकी वह परेशानी....

सतेन्द्र की बातों का सचमुच ही उस पर अचूक प्रभाव पड़ा था, जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो ।

''लेकिन कहानी में आपकी जगह पर सबकुछ झेलता है आपका पति—यानी मेरा दोस्त ।'' सतेन्द्र ने चाय का एक लम्बा घूंट लेते हुए कहा था और सपना जिसने हाथ में चाय की प्याली को लिया ही था, नीचे रखते हुए कहा, ''वह भला क्यों ?''

''मुझे लगा कि जो मुझे कहना है, वह क्षेम को ही सामने रखते हुए ठीक से खुल कर कह सकता हूँ । आपको कहानी में रखने से मैं स्वाभाविक नहीं हो पाता, इसलिए ।

सतेन्द्र ने देखा, सपना का चेहरा अनायास ही मनझमान हो गया था ।

''क्यों ? क्या हुआ ? कहानी की बात अच्छी नहीं लगी क्या ?''

''वह बात नहीं है । दरअसल, मैं सोचने लगी थी कि उस कहानी में आपके दोस्त की जगह पर मैं ही रहती तो क्या होता ! क्यों हर बार थोड़े से सुख के नाम पर औरत मात खा जाती है । जो कहानी मुझसे जुड़ी थी, उस जगह पर मेरे पति कैसे आ गये ।'' कहते-कहते उसका चेहरा एक मुलायम विरोध से भर गया था ।

''आप समझती नहीं हैं, दरअसल.....''

''मैं खूब समझती हूँ सतेन्द्र जी....किसी स्त्री के सुख-दुख को हसोत कर पुरुष जितना भी महान हो जाए, लेकिन यह बात आप भी जानते होंगे कि पुरुष के जीवन में कोई कहानी नहीं होती, कहानी तो होती है औरत के जीवन में ।'' कहते हुए सपना ने चाय की प्याली उठा कर होठों से लगा ली थी । बस हल्की-हल्की चुस्की लेती रही, उसके बाद वह कुछ बोली ही नहीं ।

क्षेम पहले जैसा ही हाथ के रिमोट से सीरियल बदलने में मस्त था, और मैं यह सोच कर चुप हो गया था कि जैसे अचानक ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया हो । गोबध लग चुका था मुझे ।

❐

जहाँ ना अपना कोई

देखने को तो साल भर से जयन्त उस जगह को देख रहा था, लेकिन वहाँ पर गुमटी बिठाने का साहस उसे किसी तरह नहीं हो पाता । रोज शाम को चौराहे पर बने शहीद चौरे पर वह बैठ जाता और वहीं से उस जगह को देख-देख कर मन-ही-मन खुश होते हुए सोचता रहता—जल्द ही गुमटी बिठा लेना ठीक होगा, किसी की नजर गड़ सकती है । क्या पता, कल ही वहाँ कोई टटिया घेर कर खड़ा हो जाए और परसों ही उसमें फल-फलारी की दुकान खुल जाए । फिर तो ऐसी सोने-सी जगह हाथ से गयी ही समझो ।

सोचते-सोचते जयन्त बेचैन होने लगता, उसकी सारी खुशी पानी-सा बहने लगती । फिर अपने को ढाढस भी बँधाता, ''धत्, इस बेहद गंदी जगह पर कौन टटिया घेर कर गुमटी बिठाने की बात सोचेगा । यह तो मैं सोचता हूँ ना कि यह सोने-सी जगह है, लेकिन औरों को ऐसा लगता होगा क्या ? दीवार से सटी यह नाली पहले तो बिहारी स्कूल की सीमा तक जाकर खत्म हो जाती थी, अब तो नाली का मुँह भी जगह-जगह से बंद हो गया है । नाली पर ही ईट-मांटी से बना पिंडा और पिंडे पर चलता है मूढ़ी-घुघनी अंगूर-बेदाना से लेकर सैलून के साथ-साथ पैंट-पतलून बेचने का धन्धा । नाली का पानी बहता है, बीच सड़क होकर—शिवाला के बिल्कुल सामने से—पीछे से नहीं । उसका पीछे वाला मुँह तो ही बन्द हो गया है ।''

जयन्त का मन यह सोचते-सोचते एकदम भिन्ना उठा, ''यहाँ के आदमी भी धन्य हैं । देखते हैं कि नाला बन्द हो गया है, तब भी खड़े होकर पेशाब करेंगे ही । नाला क्या नाला रहा, जो पेशाब बहेगा ! दीवार से ससर कर सड़क की ओर बहता जाता है और पेशाब पर ही खड़े होकर गारते जा रहे हैं सब—कोई मानने वाला नहीं, घिन किसी को नहीं ।''

''सुनिए, यह कोई तरीका है'' कि तभी जयन्त ने खड़े होते कहा । उसका दाँया हाथ उस आदमी को रोकते हुए उठ गया, जो अभी बाँयें पैर को थोड़ा मोड़ते

दीवार से लगभग सट कर खड़ा हुआ था । जयन्त की बातों का उसपर कोई असर नहीं हुआ इतना-सा ही कि उसने घूम कर उसे देखा था और फिर मुँह सीधा कर कुछ देर के लिए खड़ा रहा ।

जयन्त को लगा, जैसे वह जाकर उस आदमी को पीछे से पकड़े और उसे वहीं गोत देगा, और आज तक जो गति नहीं हुई हो वो पूरा कर देगा । अभी उसका गुस्सा उफान पर ही था कि वह आदमी उसके पास आकर खड़ा हो गया, गुस्से से तमतमाता हुआ बोला, ''लगता है खरीद कर जमीन छोड़ दी है । बड़ा मना करने आये हैं । यहाँ बैठ कर सबके पैरों को नांपते हैं, फूटिये यहाँ से ।'' जयन्त तो थरथर। वह तो खैर कहिए कि आत्मरक्षा में जब वह इधर-उधर निहार रहा था तो उसकी नजर अपने पुराने साथी शिवेन्द्र पर गई, वह भी क्या पुलिस वाली वर्दी में। सुरक्षा के लिए जयन्त ने शिवेन्द्र को आवाज दी ।

बात बन गई । पुलिस को देखते ही वह आदमी धीरे से टसक गया । ''क्या जयन्त, तुम्हें यहाँ देखता हूँ । इसी शहर में रहने लगे क्या ? मेरी बदली भी इसी शहर में हो गई है—इन्सानपुर फाँड़ी में मुंशी हूँ । अब यह शहर छोड़ना भी नहीं है । बसने के लिए जमीन-जगह भी देख लिया है...'' शिवेन्द्र ने एक साँस में ही जैसे आगे-पीछे का सब बता दिया, सब पूछ भी लिया था । लेकिन पूछने पर भी जयन्त ने यह नहीं बताया कि वह आदमी कौन था और किस बात पर गर्म हो रहा था । यह सब बताने की जगह उसने मन की इच्छा ही सीधे शिवेन्द्र के सामने रख दी थी, दाँया हाथ के ईशारे से जगह दिखाते हुए, ''यदि वहाँ पर मेरी एक गुमटी बैठ जाए तो सब बेड़ा पार ।''

''अरे यह तो तुमने मेरे मन की बात कह दी । मैं चाहता भी था कि कोई मन लायक आदमी मिले तो यह जगह उसे दिलवा दूँ, अभी तक खाली है तो समझो हमारे परमीशन के बिना तो यहाँ कोई दूब भी नहीं उग सकती ।''

शिवेन्द्र की बाकी बातों पर जयन्त ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया, बस एक ही बात से वह खिल गया था ''अरे यह तो तुमने मेरे मन की बात कह दी ।'' उसे लगा, जैसे उसके सारे बंद रास्ते खुल गए हैं, ''किसकी हिम्मत होगी जो गुमटी बिठाने से मना करेगा ।'' उसने मन-ही-मन सोचा और घूम कर चारो ओर देखा । आस-पास के गुमटी वालों की आँखें उसकी ओर ही उठी थीं । जयन्त भी पल भर के लिए एक अजीब-सी ऐंठ से भर उठा । उसने सोचा, शायद किसी ने नहीं भी देखा हो, और यही सोच कर उसने दायां हाथ बार-बार उठाकर गुमटियों की ओर ईशारा किया था । बोला कुछ भी नहीं । ऐसा कर वह अपनी पहुँच सारे गुमटी वालों को बता देना चाहता था ।

जयन्त को भी मालूम था कि उस जगह गुमटी खड़ी करना कोई आसान काम नहीं । सारे गुमटी वाले चाहते हैं कि उसके लोर-जोर की गुमटी बैठे । शिवेन्द्र के मिल जाने से पाशा पलट गया ।

आनन-फानन में दूसरे ही दिन रातो-रात जयन्त की गुमटी वहाँ खड़ी हो गई थी । खड़ी तो हो गई, लेकिन महीना भर वह उधर देखने तक नहीं गया । कारण यह कि गुमटी बैठने के ठीक दूसरे दिन ही शिवेन्द्र घर चला गया—खगड़िया । अब वहाँ जाए तो कैसे । क्या ठिकाना—सब एकजुट होकर कुछ कर ही दें । भीड़ का क्या मन । वैसे भी आजकल पुलिस का डर ही कितना रह गया है—सभ्य लोग भले ही डरें । उसमें भी शिवेन्द्र क्या एस. पी., डी. एस. पी है—बस फाँड़ी का मुंशी ही तो है । वैसे उसके दोस्तों ने ढाढस भी बँधाया है, लेकिन सब व्यर्थ ।

महीने भर बाद जब शिवेन्द्र लौटा तो उसकी उपस्थिति में ही उसने गुमटी का बंद दरवाजा खोला । द्वार तो खुला, लेकिन सप्ताह भर उसमें कोई समान नहीं आया । बस आता और दिन भर बैठे-बैठे मन-ही-मन गुरु का नाम सुमिरन करता रहता । गुमटी देखकर यदि एकाध ग्राहक उधर आ जाए तो जयन्त ऐसे हड़बड़ा उठता, जैसे किसी विपत्ति का सामना करने के लिए झटपट खुद को तैयार करता हो, या फिर ग्राहक को यह बताने की कोशिश कि आज ही तो दुकान खोली है, बस एक-दो दिन में ही सब व्यवस्थित हो जाएगा ।

लेकिन आस-पास के सभी लोग यह जानते हैं कि आज तक वह व्यवस्थित नहीं हो पाया है ।

सोचने को तो जयन्त ने यह भी सोचा था कि यह गुमटी, सिर्फ पान के लिए ही नहीं होगी—अखबार, पत्रिका, चॉकलेट, बिस्कुट की भी व्यवस्था होगी और गुमटी के एक कोने में, वह चाय की व्यवस्था कर देगा तो पान की दुकान एकदम चल निकलेगी । चाय पीने के बाद पान की तलब होती ही है । आसपास चाय की कोई दुकान भी तो नहीं है । फिर कोई चाय पीने आए, ना आए, उसके पहचान के दस यार-मित्र तो शाम को आते ही हैं—दस बीस कप भी बिक जाता है तो काफी है ।

यही सोच कर उसने आठ-दस ईंट जोड़कर खड़ी की थी कि तभी एक आदमी ने आकर पूछा था, ''यह क्या बना रहे हो ?''

जयन्त को लगा, जैसे वह उसका प्लान समझ गया है और अब खा-म-खा बतंगड़ खड़ा करेगा । दस आदमियों को जुटाएगा और यह चूल्हा तो छोड़िए, गुमटी-उमटी ही उखाड़ कर ना फेंक दे । सो घबराते हुए दोनों हाथों के पंजे से इन्कार में हिलाते हुए जयन्त कहने लगा, ''नहीं, नहीं । यह नहीं समझिए कि चूल्हा बना

रहा हूँ, चाय-वाय की बिक्री के लिए ।'' और कहते-कहते वह गुमटी से उछल कर नीचे उतर आया था—अपनी धोती का ढेका ठीक से संभालते हुए ।

''खैर तब तो कोई बात नहीं है, मैं तो यही समझा ।'' कहकर उस आदमी ने चूना मांगा ।

जयन्त को मालूम है कि उसने सामने में जो चूना-कत्था के डब्बों को सजा रखा है, उसमें ना तो कत्था है, ना तो चूना । जब पान ही नहीं है, तो चूना-कत्था किस लिए । शायद उस आदमी ने खैनी की पूड़िया लटकता देख सोचा होगा कि चूना भी जरूर होगा । लेकिन यह सुनकर कि चूना नहीं है, बोला, ''तो बेचते क्या हो—अपना भदरोइयां ।''

जयन्त का मन हुआ कि कह दे, ''हाँ, वही तो बेचने के लिए गुमटी खोली है, लेकिन तुम लोग वह भी बेचने दो, तब ना ।''

उसके वहाँ से जाने पर जयन्त ने कनखिया कर उसे पीछे से देखा था—आखिर जाता कहाँ है ? और यह देखकर, वह बड़ी चिन्ता में डूब गया कि वह आदमी सामने की ही एक दुकान में जाकर रुका । चूना लिया और नजर घुमा कर उसकी ओर एक बार देखा था । आखिर क्यों देखा ? देखने का क्या मतलब हो सकता है ? इस बात को लेकर वह एक दिन तक परेशान रहा ।

शुरुआती एक-दो दिन तो उसका मन एकदम बेचैन रहा, फिर यह सोच कर किसी तरह मन स्थिर किया कि यदि ऐसी कोई बात होती, तो हो गयी होती। वह तो बेकार ही 'नहीं' बात का 'हाँ' बात लेकर बैठ जाता है । इस बात को जयन्त मन में खूब गड़ा कर बैठा लेना चाहता है, लेकिन किसी-न-किसी मौके पर, घूर कर देखने वाली बात, उठ ही जाए । उस समय वह भोलेबाबा का गीत सर हिला-हिला कर मन-ही-मन गाने लगता—सब बातों को भूल जाने के लिए....कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ । उस समय जयन्त की आँखें सिर्फ शिवाला की ओर होती । भजन गाते-गाते खुद ही बुदबुदाने लगता, ''सब सोचते हैं, मैंने गुमटी बिठा लिया तो भरी हुई दुकान ही बिठा ली । अरे, गुमटी चलाने के लिए अभी भी हजार-दो-हजार की जरूरत है, और यह पूंजी आएगी तब ना । कत्था, सुपाड़ी, पाँच किस्म का जर्दा, सिर्फ पान के पत्ते ला देने से ही क्या होगा....देखो उस आदमी को, बोला, ''तो बेचते क्या हो ? अपना भदरोइयां ?'' वह तो खैर पराया आदमी था...जब बीच-बीच में शिवेन्द्र इस तरह बोल जाता है कि, ''तुमसे गुमटी चलानी मुश्किल है जयन्त । यहीं तुम्हारी जगह पर कोई और होता तो बीस कमाता और पाँच दूसरे में भी लुटाता ।'' अब बताइये शिवेन्द्र को यह बोलना चाहिए । वह थाना का मुंशी है, उसे हजारों अलग से आते होंगे, मैं कैसे तुरंत हजार ले आऊँ । एकाध को कहा भी है, देंगे तो

गुमटी भी चलेगी, और देंगे ही—देर-सबेर ।

यह सोचते ही जयन्त के चेहरे पर सन्तोष का भाव जाग उठा और फिर शिवाला की ओर मुँह फेर कर गाने लगा—कखन हरब दुख मोर हे भोला नाथ ।

००

आज भी शिवेन्द्र जयन्त की दुकान की ओर से गुजरा, चार दिन पहले भी गुजरा था, और पहले की तरह ही एक नजर देखते हुए साइकिल से निकल गया, टोका नहीं। और तभी से वह इस बात परेशान है, कि आखिर उसने टोका क्यों नहीं ? उसके मन में आँधी चलने लगती है । मैं बेकार की बातें सोच रहा हूँ, शिवेन्द्र को यदि थोड़ा गुस्सा भी है तो क्यों मेरे हित के लिए ही ना । क्या कहा था उसने, जो मैंने बुरा मान लिया ।

जयन्त को अपने इस स्वभाव पर शर्म भी आती है, गुस्सा भी । आखिर बात ही क्या हुई थी ।

कि हठात् ही उसे अपने इस स्वभाव पर हँसी आ गई । एकदम औरतों की तरह स्वभाव है उसका—औरतों से भी गया गुजरा । औरतें तो फिर भी मौका आने पर तन कर खड़ी हो जातीं हैं । और मेरा तो यह हाल है कि टेबल बनाने के लिए जिस बढ़ई को रुपये दिया था, वह भी दिन महीना नचवाता रहा—आज लीजिएगा, कल लीजिएगा, सुबह दूंगा, शाम को दूंगा, दोपहर में बनाउंगा....बाप रे बाप, ऐसे भी आदमी होता है । वही आदमी गुमटी बनाने को जो पचास रुपये मेरे पास बाँकी रह गया था, तो छाती पर खड़ा होकर दूसरे ही दिन ले लिया । बेटे के साथ आया, तब उसकी बोली थी, ''पैसा नहीं दे, तो इसे दुकान में ही बंद कर आग लगा दो, दुकान के साथ ही जल कर खक हो जाएगा । पैसा नहीं देगा...''

और उसी आदमी ने मेरे ही सौ रुपये के लिए मुझे कैसा नाँच नचवाया। बाप रे बाप । तब दोष मेरा ही है—यदि एक बार उसके जैसे ही तन कर खड़ा हो जाता तो क्या मजाल थी कि रुपये ना देता । लेकिन मैं तन कर खड़ा कैसे होता। वैसा तो मैं अपनी पत्नी के सामने भी नहीं कर पाता हूँ'' इस बात पर जयन्त अपने-आप ही ठठा कर हँस पड़ा । औरतों से हार की बात से ही जयन्त को एक विचित्र गुदगुदी-सी होने लगती है । अभी भी वही हुआ । उसकी दोनों तलहत्थी ने जोर से मिलते ही ताली की आवाज की, और खिलखिलाहट में ही उसका सर ऊपर की ओर उठ गया ।

''क्या बात है जयन्त जी, बड़ा खिलखिला रहे हैं ।'' कोई नवयुवक गुमटी के ठीक सामने वाले बिजली के खम्बे से कंधे को टिकाते हुए बोला, ''अहो, खुद भी ठिठयाते

हैं और शाम को दस लोगों को घंघेट कर दतनिपोड़ी करवाते हैं । सुनिए, यदि दुकान पर फालतू लोगों का अड्डा लगवाया, तो सोच लीजिए । हमलोगों की बैठकी खराब कर दी है । आज शाम से ही यदि कोई अड्डा जमाने यहाँ आया तो समझियेगा।''

जिस तरह नवयुवक कह कर चला गया था, वैसे भला जयन्त कैसे मुँह खोल कर कह पाता, इतने-इतने यार-दोस्तों को । नहीं, यह किसी तरह भी नहीं हो सकता । उसने गुमटी समय से पहले बढ़ाई और सीधे फाँड़ी की ओर चल दिया । फाँड़ी के दस कदम इधर ही होगा कि उसने उसी नवयुवक को आते देखा, लेकिन दोनों ही अनजान बने अपने रास्ते पर चलते रहे—तो क्या यह भी फाँड़ी ही गया था, गया था तो किस लिए ? कही मेरी ही शिकायत तो नहीं कर आया है ? सोचते ही एक बार विचलित हो उठा जयन्त, लेकिन यह सोचकर कि मुंशी जी तो मेरा ही साथी है, मैं तो बेकार ही किसी बात को हद तक सोचकर डरने लगा ।

फाँड़ी पहुंचकर वह देर तक फाँड़ी के दरवाजे पर ही खड़ा रहा....आखिर शिवेन्द्र निकल क्यों नहीं रहा है ? कितना भी व्यस्त होगा तो क्या खिड़की से भी बाहर नहीं झाकेगा ? कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे देखकर ही ऐसा कर रहा है ? यदि कुछ बात है तो मुझे आफिस ही जाकर मिल लेना चाहिए....यह बात सोचने को तो उसने सोच ली, लेकिन जयन्त का एक भी कदम फाँड़ी के अन्दर नहीं बढ़ पाया। उसने मन-ही-मन सोचा, वह आज तक थाना-फाँड़ी नहीं गया, कौन क्या समझ बैठे, कोई कुछ पूछ ही दे....नहीं, नहीं, वह बाहर में ही शिवेन्द्र का इन्तजार करेगा । आखिर कभी तो शिवेन्द्र बाहर निकलेगा । निकलने पर ही सारी बातें बताऊंगा कि कैसे आज एक लड़का उसे धमका गया है ।

और काम निपटा कर जब शिवेन्द्र बाहर निकला तो जयन्त बिल्कुल स्प्रिंग वाले खिलौने की तरह उछल कर उसके समीप आ गया । अपना संकट बताते हुए जल्दी कुछ करने को कहा । सारी बातें सुनकर पहले तो शिवेन्द्र ने बेरुख भाव से यही कहा, ''गुमटी की जगह किसी की रजिस्ट्री या खरीदी हुई थोड़े ही होती है, जो जोगे उसे । सब जानते हैं—जोरू जमीन जोर का । वैसे मैं जाकर समझा आऊँगा'' और फिर हठात् ही रुख बदलते कहा, ''जयन्त तुम्हें गुमटी इसलिए नहीं दिलवाई थी कि दस आवारा किस्म के लोगों को जुटा कर तमाशा करवाओ । दुकान है धन्धे के लिए, नौटंकी लगाने के लिए नहीं । दस दिन के बाद मिलना ।'' और इतना कह कर मुंशीजी फाँड़ी के बैरक की ओर चल दिए ।

जयन्त भी लौट आया और देर तक सोचता रहा—अब भला अपने मुँह से कैसे कहेगा दोस्तों को—तुम लोग शाम को यहाँ बैठकी मत करो । लेकिन जिस तरह वह नवयुवक और आज शिवेन्द्र कह गया, उससे तो चुप रहना मुश्किल है । तो

करूं क्या ?.....हाँ, एक बात हो सकती है कि मैं घर चला जाऊँ । क्या होगा—आठ-दस दिन गुमटी बन्द ही रहेगी । शिवेन्द्र ने भी तो दस दिन के बाद ही बुलाया है । फिर जब वो लोग समझ जायेंगे कि अब दुकान नहीं खुलेगी, तो खुद ही रास्ता बदल लेंगे । वैसे भी मेरी गुमटी खुलती ही कितने दिन है...अब आठ-दस दिन बन्द ही रहेगी तो क्या ?''

इस नये विचार से जयन्त एक तरह से निश्चिन्त हो गया, फिर मन-ही-मन सोचा, ''ये रिटायर्ड दोस्त लोग भी कौन सा मुझे निहाल करते हैं । ग्राहक के लिए एक बेंच बिछाता हूँ तो उसपर मधुमक्खी के झुंड की तरह जमे रहते हैं । जाते भी हैं तो दुकान बन्द करने के बाद ही । बेंच पर जगह नहीं मिले, तो डब्बों को हटाकर दुकान के अन्दर ही महाजन की तरह बैठे रहेंगे, जैसे मैंने सबका कर्ज खाया हो । और नहीं तो तीन-चार लोग तो दुकान के आगे ही खड़े रहेंगे । जो एक दो ग्राहक बीड़ी-सिगरेट के लिए आते हैं, भीड़ देखते ही टसक जाते हैं । शैलेन्द्र ने मेरे हित के लिए ही तो कहा, ठीक ही कहा । सब दोष मेरा ही है । अच्छा ही होगा, जो दस रोज दुकान बन्द कर घर चल दूँ ।

और किया भी वही । एक दिन जयन्त ठीक दोपहर के समय आया, गुमटी खोली कुछ छोटा-मोटा सामान अपनी झोली में डाला, फिर गुमटी पर ताला चढ़ा दिया, और बिना इधर-उधर देखे ही बस स्टैण्ड की ओर झूमता-झामता बढ़ गया ।

००

दस दिन के बाद आज जयन्त शहर लौटा है । शाम होने को ही है—गाड़ीवाले ने आज देर कर दी । ऐसा कभी नहीं होता था, खैर कुछ नहीं होगा तो नहीं, धूप-दीप दिखाकर गुमटी बढ़ा दूँगा—यही सोच जयन्त लम्बे-लम्बे डेग भरता गुमटी तक आया, लेकिन गुमटी तक आते ही वह तो पत्थर की मूरत बन गया । बिना लाठीवाले पत्थर का गाँधी । एक बार तो उसे विश्वास ही ना हुआ कि वह जो कुछ देख रहा है, वह सही ही है । उसने अपने ऊपर काबू पाते हुए दो-तीन बार सर को झटका और फिर अपनी गुमटी को गौर से देखा ।

झूठ नहीं था, उसने जो कुछ देखा, एकदम सही था । गुमटी पर जिस जगह पर वैष्णवी ताम्बूल भंडार की तख्ती थी, वहीं पर नयी तख्ती टंगी थी—'शुद्ध देशी शराब की दुकान' । गुमटी बाँस की टटिया से घिर गई थी, जिसमें सर घुसने भर की जगह बनी हुई थी । गुमटी के अन्दर अस्सी मन का एक आदमी बैठा हुआ ।

जयन्त ने मन-ही-मन याद किया—इतने दिन वह यहाँ पर रहा—कभी भी उसने इस आदमी की शक्ल नहीं देखी । काली चमड़ी पर काले बाल, काली घनी

मूँछ और दाढ़ी एक हो रही थी । आँख की घूमती पुतली से जयन्त ने जाना कि वह आदमी उसे ही देख रहा है ।

जयन्त को जैसे थरथरी लग गई । उसे लगा, जैसे वह आदमी अभी तुरंत टटिया के बाहर होगा और उसका कॉलर पकड़ कर कहेगा, ''चोट्टा, जब माल लेना नहीं है, तो ऐसे घूर क्या रहा है रे । माल टपाने का रास्ता ढूँढ रहा है क्या ? भागा कि अभी....''

और जयन्त हड़बड़ा कर पाँच कदम पीछे हट गया, शहीदवाले चबूतरे के पीछे, जहाँ से उसपर उस मूच्छड़ की नजर न पड़ सके । क्योंकि जयन्त को अब भी लग रहा था कि वह आदमी छलांग मारकर आएगा और...

जयन्त के पेट में बेचैनीवाला दर्द उठने लगा । दर्द कम करने की कोशिश में उसने आहिस्ता से अपनी आँखें बंद कर लीं । आँख बन्द करते ही उसे लगा कि दर्द कम होने लगा है । और ना जाने, कब उसकी आँख लग गईं ।

जब उसकी आँख खुली तो कानों में शिवेन्द्र की आवाज सुनाई पड़ी, ''कितनी बार तुम्हें कह चुका हूँ कि तुम्हें डरना ही नहीं है । पहले वह मिले तो... । उसने तो मेरी कई महीनों की कमाई पर चूना लगाया है । जगह पर गुमटी दिलवाई थी कि....पहले वह मिले तो, मैं भी फाँड़ी खोल कर ही बैठा हूँ । तुम्हें डरने की कोई जरूरत ही नहीं है....तुमसे काम है...कल...तो ठीक ।''

जयन्त के पैर एकदम थरथराने लगे । मुँह से लेकर पूरे देह में जैसे झनझनाहट होने लगी । कहीं उन दोनों में से कोई उसे देख ना ले और क्या ठिकाना....'' यह सोचते ही जयन्त का पूरा शरीर सिल होने लगा । उसने अपनी सांस एकदम बंद की और रेंगते हुए मूर्त्ति के पीछे छिप गया । धोती के एक छोर से अपना मुंह इस तरह ढँक लिया, जैसे कि नींद आ जाने के कारण वहीं पर कोई मुसाफिर लेट गया हो । वह तब तक लेटा रहा, जब तक गुमटी बंद ना हो गई । ❐

धरमदास की कपली गाय

ढीबा धरमदास को पूरे नाम से शायद कोई पुकारता, पुकारे तो ढीबा जी ही कहकर। हाँ, उसके संगी-साथी जरूर ही उसे ढीबा धरमदास कहते, जो खाने-पीने में हरवक्त उसके साथ रहते ।

ढीबा । यह नाम उसकी दादी ने रखा था । जनमा तो एकदम लार-पुआर हो रहा था । वैद्य-हकीम, ओझा-गुनी हर जगह दौड़-दौड़ कर दादी ने उसकी जान बचाई और हालत सुधरी तो ऐसी कि साल भर में ही पैर-हाथ कद्दू की तरह और पेट कदीमा-सा हो गया, यह देखकर दादी ने एक बार उसे ढीबा क्या कह दिया कि उसका नाम ही ढीबा पड़ गया ।

ढीबा ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, त्यों-त्यों हल्के-फुल्के कामों से भी उसका मन उचाट-सा होता गया । देखने में भले ही वह जितना हट्टा-कट्टा दिखता हो—पर था बिल्कुल फूला हुआ । भरी हुई बड़ी बाल्टी क्या उठाता, साँढ़ की तरह फू-फू करने लगता । इसीलिए उसके माँ-बाप भी उसे कुछ काम करने को नहीं कहते ।

यह तो भाग्य कहिये कि इसी गाँव के चकबन्दी ऑफिस में दास बाबू एक अफसर बनकर आए और ढीबा के भाग्य खुल गए । एक बार किसी की पैरवी लेकर वह दास बाबू के पास पहुँचा, तो उसे देखते ही दास बाबू उसकी ओर खिंच से गए। जटा-जूट, दाढ़ी-मूंछ रहने के बावजूद बिल्कुल शहरी की तह चालू-पुरजा । फिर क्या था—दास बाबू के घर उसका उठना-बैठना शुरू हो गया ।

गाँव भर में ढिंढोरा पिट गया—ढीबा चकबन्दी ऑफिसर दास बाबू का मित्र हो गया ।

अब क्या, अब तो ढीबा की तूती बोलने लगी । जितना दास बाबू की चौक-चौराहे पर पूछ ना थी, उससे कहीं बढ़कर ढीबा की । ढीबा ने भी समय को पलटते देख अपनी चाल-ढाल में पलटी खाई ।

अब वह कोशिश करता कि गाँव के सबलोगों से जब-तब जुबान न

लड़ाऊँ। अब तक तो उसकी यही आदत थी कि जिसे भी खैनी रटाता देखे, उसके आगे हाथ फैला दे, अब इस आदत को उसने एकदम बन्द कर दिया । बहुत हुआ तो अपनी जेब से खैनी वाली डिब्बी निकाली और किसी को थमा दी, लेकिन उसकी लगाई खैनी खाता नहीं—ज्यादा जान-पहचान बढ़ाना ठीक नहीं । वैसे भी साधू-सन्यासी को सबका छूआ नहीं खाना चाहिए ।

दास बाबू के घर ढीबा का बस इतना ही काम—उनके साथ बैठकर चाय पीये और गाँव के लोगों के बारे में एक-एक जानकारी दे । इससे यह हुआ कि उस गाँव के बारे में जितनी जानकारी दास बाबू को थी, उतनी उस गाँववालों को भी नहीं। ढीबा रोज-रोज नई बातों की जानकारी इकट्ठा करे और चाय की चुस्की के साथ रस ले-लेकर एक-एक बात बताए । दास बाबू के साथ इस बैठकी से ढीबा ने भी बहुत कुछ नया सीखा था ।

उसने दास बाबू से ही सीखा कि चाय को माँड़ की तरह सुड़क-सुड़क कर नहीं पीते । बस ऐसे पीते हैं कि होठ तक की आवाज न हो । इस हिदायत के पालन में कई बार चाय ढीबा के होठ के छू भर कर ही रह जाए, जीभ तक भी ना पहुँचे ।

एक बार ढीबा दास बाबू के साथ वैसे ही चाय पर बैठा हुआ था तो बात-ही-बात में उसने दास बाबू से कहा, ''मैं चाहता हूँ कि आफिस के सामने में वह जो ठाकुरबाड़ी है, आप उसमें सुबह-शाम धूप-दीप की व्यवस्था करवा दें । बिना पुजारी के ठाकुरबाड़ी किस तरह घास-फूस से भर गई है, साफ-सुथरा हो जाएगी, तो आखरी पिपरी का डर भी नहीं रह जायेगा ।''

दास बाबू के चेहरे पर संतोष का भाव झलक आया, लेकिन उससे ज्यादा संतोष का भाव ढीबा के चेहरे पर था । सरकारी मदद मिल जाने पर तो ढनमनायी ठाकुरबाड़ी मथुरा का मंदिर ही बन जाएगी । वह अपनी इस खुशी को एकदम से छिपा गया । सालों से तो वह यही चाह रहा था । ''ढीबू, आज से तुम इस मन्दिर के पुजारी । आज से तुम्हारा काम मन्दिर में भगवान की सेवा । मैं तुम्हारे लिए यहीं बगल में एक मड़ैया भी बनवा देता हूँ । रहने-सहने में दुख नहीं होगा ।'' दास बाबू ने कहा ।

और ठीक उसी दिन शाम के वक्त लोगों ने शंख की आवाज पहली बार सुनी—चकबन्दी आफिस के सामने वाली ठाकुरबाड़ी में । सभी अचरज में । कोई धूप-दीप तो उस ठाकुरबाड़ी में रख आता, लेकिन शंख की आवाज तो आज तक नहीं आई । यहाँ है ही क्या । बस दो तरफ से घिरी दीवार का मन्दिर ही तो ।

कभी इसीके अन्दर अष्टधातु की एक मूर्त्ति थी—बड़ी पुरानी और बड़ी

कीमती, हाथ भर की जरूर होगी । एक दिन हल्ला हुआ कि मूर्त्ति गायब हो गई। आखिर किसने गायब की ? गाँववाला का शक ढीबा की ओर ही जाए । हो ना हो, यह काम उसका ही है । वही महीने भर से ठाकुरबाड़ी के पिण्डी पर लेटा-पटाया देखा जाता था—सुबह, दोपहर और शाम । कितनी बार तो लोगों ने उसे उसी ठाकुरबाड़ी की ओर से होते हुए घर जाते देखा है—आखिर उधर से घर जाने का क्या मतलब, जबकि ढीबा का घर पश्चिम में ही पड़ता है, फिर पूरब होकर, इतना घूम कर घर जाने का क्या मतलब । शाम के वक्त की बात होती, तो लोग मान भी लेते कि ठाकुर के दर्शन के लिए घूम कर घर जा रहा है, वो भी बात तो नहीं थी—दस बजे रात के बाद उधर से जाने की बात किसी के दिमाग में नहीं अटती। .....लेकिन यह काम अगर ढीबा का नहीं है, तो फिर किसका है । सौ साल से वह मूर्त्ति ठाकुरबाड़ी में थी, ना पहरा, ना पुरोहित । गाँव भर की पहरेदारी थी, लेकिन जब से लोगों ने ढीबा पर एक तरह से भरोसा कर मूर्त्ति के बारे में सोचना छोड़ दिया, ठीक उसीके महीने भर के भीतर मूर्त्ति भी अलोपित हो गई.....बात तो सही ही थी, लेकिन ढीबा भी कोई ऐरू-गैरू घर का तो नहीं है....उसकी एक पुश्त पुरोहितगिरी में ही रही है ।

इस बात पर जोतखी काका एकदम गरम हो जाते हैं—यह बात तो तुम सब सतयुग की कर रहे हो । अरे आज की बात करो कि कैसे मन्दिर का पुजारी ही मूर्त्ति गायब कर विदेश में बेचवा देता है । तो ढीबा कौन-सा वशिष्ट और विश्वामित्र है कि यह नहीं कर सकता ।

बात यहाँ तक बढ़ी कि पुलिस भी ढीबा तक पहुँच गई । और जब थाना पर उसे लाया गया, तो ढीबा के चेहरे पर कोई चिन्ता का भाव ना था । दारोगा के सब पूछने पर उसने बस इतना-सा कहा, ''भगवान सब देख रहे हैं दारोगा बाबू, उनसे बड़ी सजा आपकी नहीं हो सकती । जिसने-जिसने मुझे यहाँ पहुँचाया है, वो-वो भगवान से मिलने वाली सजा का इन्तजार करे ।'' ढीबा का इतना भर कहना था कि ढीबा के विरोधी भी पलटी खा गए थे । सब ढीबा के पक्ष में बोलने लगे थे। सच पूछिये तो भगवान का नाम सुन दारोगा का भी पसीना छूट आया था । महीना भर बाद ही प्रमोशन का कागज निकलने वाला है, क्या ठिकाना ढीबा बेकसुर हो, जों भगवान नाखुश हो जाएं.....और ढीबा निर्दोष घोषित हो गया—थाना से ही नहीं, गाँववालों की ओर से भी ।

कोई नहीं जानता कि थाना से छूटने के बाद वह सालो भर कहाँ रहा और सालों भर के बाद जब घर लौटा तो दाढ़ी, बाल एकदम बढ़ाये हुए । सबने देखा—ढीबा तो बिल्कुल साधू बन गया है ।

जिस दिन ढीबा ने गाँव छोड़ा था, उसी दिन से उस ठाकुरबाड़ी में लोगों का आना-जाना भी बंद हो गया था । रह ही क्या गया था वहाँ, जो लोग जाते । ज्यादा-से-ज्यादा कोई मंदिर के बाहरी पिण्डी पर धूप-दीप जला आता, बहुत अन्दर तक तो कोई जाता भी नहीं ।

सफाई-पुताई के बिना मंदिर की दीवारें ढनमना गई । अन्धड़, बरसात, ध ूप से दीवारें ऐसी हो गईं थीं कि धीरे-धीरे यह बात भी फैल गई—उस ठाकुरबाड़ी में रात-बेरात भूत बोलते हैं । फिर क्या था—लोग दिन में भी उधर से गुजरते तो एक-दो आदमी साथ लेकर ही । जब चुल्हाय काका नें खुद से दस लोगों के बीच में कहा—परसों की ही बात है । मैं गाड़ी पर बीस बोरा गेहूं लादकर घर जा रहे था। देर शाम । ठीक ठाकुरबाड़ी के समीप आया ही था कि जी घबराने लगा । गाड़ी रोकी और वहीं एक ओर जाकर बैठ गया । । मिनट भर बाद उठा तो देखता हूँ कि दोनों बैल जुआ से निकल कर बोरे की ओर मुँह कर खड़े हो गए हैं और आँख फाड़-फाड़ कर गाड़ी पर बैठे किसी आदमी को देख रहे हैं । मुझे कुछ समझ ही ना आया । गाड़ी पर कोई ना था । मैं एकेक कर दोनों बैलों को जुआ में खींच कर लाने की कोशिश करता, लेकिन बैल भी एकदम से छलांग मार कर फिर मोढ़ा की ओर आकर खड़े हो जाते और वैसे ही हड़कते-हड़कते गाड़ी पर बैठे किसी आदमी को देखने लग जाते । अब तो मेरा माथा ठनका । सोचा, डरने से तो और गड़बड़ हो जायेगी । जी को कड़ा किया, हनुमान चालीसा दुहराते गाड़ी पर बैठ गया । अभी गाड़ी पर बैठा भी न होऊँगा कि लगा—गाड़ी पर हाथ रख कर किसी ने मुझे नीचे पटक दिया हो । मैं तो खड्डे में । अब मुझे सारी बात समझ में आ गयी थी.....

यह सब बातें चुल्हाय काका बड़ी विस्तार से सबको सुनाते हैं कि कैसे उन्होंने रात काटी ।

चुल्हाय काका की बातों पर कौन विश्वास ना करे । उस दिन से तो उस रास्तें से जानेवाला व्यक्ति यदि अकेला हो तो बीस बाँस हटकर ही पोखर वाले रास्ते से जाता है । थोड़ा घुमावदार ही है, पर है तो सुरक्षित ।

आज पहली बार बहुत दिनों के बाद लोगों ने ठाकुरबाड़ी में शंख की आवाज गूंजते सुना । तब लोगों ने यह भी जाना कि ढीबा ठाकुरबाड़ी का सरकारी पुजारी भी हो गया है, फिर क्या था, मूर्त्ति गायब होने जैसे ही ढेर-ढेर बातें उठीं, लेकिन बातें दो निष्कर्षों पर ही खत्म हो गई कि ढीबा अब सरकारी पुजारी हो गया है, इसलिए भूत-प्रेत उसे नहीं पकड़ सकते । सरकारी लोग तो खुद ही भूत-प्रेत होते हैं, भूत-प्रेत उन्हें क्या पकड़ेंगे, उसमें भी सरकारी पुजारी को । फिर दूसरी बात यह—कि ढीबू तो खुद ही पहले से सिद्ध है । उसे तो टाइम मिला था कि अमूक

समय में उसे पूर्ण सिद्धि मिल जायेगी, सो मिल गयी.....यदि नहीं मिल गई होती तो पटना-दिल्ली तक जाकर पढ़े-लिखे दास बाबू जैसे आदमी कैसे उसे इज्जत देते हैं ।'' और यह विश्वास धीरे-धीरे लोगों में इतना बढ़ा कि दास बाबू की तरह ही पूरा गाँव उसे ढीबा धरमदास कहने लगा, वैसे इसमें सबसे अधिक मदद की तो दास बाबू ने ही ।

और शंख गूंजने के ठीक चार दिन बाद ही ठाकुरबाड़ी में हाथ भर की मूर्त्ति भी आ गई, बिल्कुल पहले वाली ठाकुर जी की मूर्त्ति की तरह । लोग देखते तो आचरज करते । अष्टधातु वाली मूर्त्ति, लेकिन काली कैसे हो गई ? ढीबा यह बात पूरे इलाका को समझाता कि मूर्त्ति तो वही है, मेरी सिद्धि से डरकर चुरानेवाले ने रख दिया है....पाप के घर में रहने से ही भगवान काले पड़ गए हैं । भगवान को इस पाप की छाया से मुक्त करने के लिए महीने भर का अष्टयाम करवाना जरूरी है । ऐसा होगा तो भगवान भी अपने रूप में आ जाएंगे और इलाका भर में पुण्य फैल जाएगा । कोई एक शंका करता तो पाँच समझाने वाले । समझाने वालों में चुल्हाय काका भी शामिल थे । काका समझाते, लेकिन तब भी लोग यही शंका करते कि भगवान भला दूध कैसे पीएँगे, लेकिन पीये थे की नहीं....तब मूर्त्ति काली से गोरी कैसे ना होगी—भजन कीर्त्तन और तंत्र-मंत्र में कौन-सी ताकत नहीं होती । फिर एक बात क्यों नहीं समझते हो—ढीबू धरमदास के आने से पहले किसी की हिम्मत थी कि ठाकुरबाड़ी की ओर से अकेले चला जाय । पाँच लोग मिल कर जाते थे और पाँचो हनुमान चालीसा पढ़ते । ये हमारे ढीबू धरमदास जी ही हैं, जो आधी रात में अकेले वहाँ पड़े रहते हैं । क्या वैसे ही पड़े रहते हैं ? सिद्धि पाई है—पाँच प्रेत दिन रात हमारे ढीबू धरमदास के आगे-पीछे करते रहते हैं । धरमदास जी का तो सिर्फ ईशारा भर होगा, सब अटका-टोटका दूर कर देंगे भूत-प्रेत । कर ही रहे हैं, नहीं कर रहे तो कैसे मेरी बैलगाड़ी अब रात-बेरात बिना विघ्न के घर पहुँच जाती है । और फिर इतनी बात ही नहीं है ना, ठाकुरबाड़ी के ही समीप धरमदास के गुरु महाराज देव दास की समाधी भी बनेगी—ताजमहल की तरह भव्य । सारी बातें बड़ी तेजी से फैल रही थी ।

ढीबा से यदि कोई पूछे तो वह ऐसे आँख-मुँह बन्द कर लेता जैसे इस बात का शक करना, इतना बड़ा पाप है, जिसे सौ अष्टयाम करने के बाद भी दूर नहीं किया जा सकता । ऐसी शंका करने वालों को देखना भी पाप ।

पूरे इलाके में खलबली थी—रामनवमी के महीना भर पहले से ही अष्टयाम शुरू हो जायेगा और रामनवमी के दिन खत्म हो जाएगा । जो जितना दान से सके। आखिर इलाका भर के महोत्सव की बात है और फिर क्या ऐसा उत्सव बार-बार होता

है।

ढीबू के साथ सौ कार्यकर्त्ता से कम नहीं लगे हुए थे—इतना बड़ा यज्ञ जो हो रहा है । आखिर भंडारा क्या अकेले संभलने वाला है । दस औरतों से कम खटने वाली नहीं चाहिए । लेकिन ढीबू को अन्य औरतों पर विश्वास नहीं है । उसने सिर्फ अपनी ही दोनों औरतों को बुलाया है, और बाकीं काम संभाल देने के लिए अपनी दोनों बूढ़ी सासों को ।

जिस दिन से हर घर से एक पंसेरी धान वसूलने का काम शुरू हुआ, उस दिन सें ढीबा ने गद्दी पकड़ ली । ठाकुरबाड़ी के बाहर बाँस-बत्ती की मदद से बड़ी-बड़ी दो कुटिया तैयार की गई । एक में ढीबू और उसके साथ चुल्हाय काका। दूसरे में ढीबू के रिश्तेदार और जाननेवाले। यह बात कोई नहीं समझ सका कि जिस चुल्हाय काका से ढीबू की कभी ना पटती, वो एक ही कमरे में रात-दिन कैसे बिताते हैं ।

रामचेलवा ने एक दिन चुल्हाय से कहा, ''हो काका, जिस समय ढीबू का प्रवचन करते हैं, उस समय उनकी आवाज के पीछे हल्की-हल्की एक आवाज और उठती है, मुझे तो वह आवाज आपकी ही लगती है ।''

''चुप ! लगता है तम्हारे दिन पूरे हो गए हैं । अरे वह जो दो बार आवाज सुनाई देती है, वह दो बार बोलने वाले साउण्ड बॉक्स के कारण ही ।'' चुल्हाय ने रमचेलवा के मुँह पर हाथ रखते कहा था, ''क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि ढीबू सरकारी पुजारी है, यह सब बोलोगे तो कल ही जेल में दिखाई दोगे ।''

जो हो ढीबू का प्रवचन सुनने के लिए औरत-मर्द उमड़ पड़ते । हफ्ता में पाँच दिन दास बाबू भी आकर खड़े हो ही जाते, अलग बात है कि जोतखी काका उधर एक बार भी झांकने तक ना जाते । पूछने पर कहते, ''आंय रे, जिस ढीबा के सर पर बाल ना थे, आज इस दास बाबू के कारण उसीके नांक में जटा बन गई । बोलो—जो जिन्दगी भर अपनी औरतों को वनवास देता आया, आज वही ठाकुरबाड़ी में बिठाकर गृहस्थ धर्म का महत्व बताता है । कहता है—असल सन्यासी तो परिवार के बीच ही रहकर भगवान का भजन करता है । ढिंढोरा पिटवा रहा है कि वह जमा चंदा-पैसों से ठाकुरबाड़ी के समीप ही अपने गुरु की समाधि बनवाएगा, आंय रे । और तुम सब ऐसे कि मूर्त्ति वाली बात ही भुला गये ।''

जोतखी काका की बात ढीबा के कान में ना पड़ती, ऐसी बात नहीं थी, लेकिन वह इन सब बातों से ऐसे अनजान बना रहता था कि जैसे उसे खुद ही अपने ऊपर अचरज हो । फिर ढीबा को इन बातों पर ध्यान देने की फुर्सत ही कहाँ थी। घी, चावल, तेल, दाल, आटा, फल-फलारी—इतना-इतना सामान जुट रहा था—सब

का ध्यान रखना था । उसे टपाने वालों की भी कमी ना थी—यह बात ढीबा से बढ़कर और कौन जानता है ।

लेकिन इन सब से ज्यादा उसका ध्यान इलाका भर से आने वाले चंदे के रुपयों पर थी । किसने कितना दिया—इससे ज्यादा वह इन बातों पर ध्यान देता कि कितना आया ? किसने क्या दिया और लेनेवाले ने कितना जेब में रखा—ढीबा जानता है, कि इसपर ध्यान देने से चंदा कटानेवालों की टीम ही भंगट जाएगी । बाढ़ का पानी जितना-सा पोखर-कुआँ में बच जाए, वही पानी-पानी, बाकी फानी ।

सिर्फ पाँच दिनों में पन्द्रह हजार जमा हो गए । कम बड़ी बात नहीं है। खोमचा और लेमनचूस बेचने वालों से भी चंदा वसूला गया था । वैसे तो ढीबा ने अपने आदमियों से सुनाकर तो यही कहा था कि ''चंदा के लिए किसी को परेशान ना किया जाए, धरम-करम है स्वेच्छा से ।'' लेकिन मुखिया, सरपंच, चौधरी जैसे घरों को छोड़ कर हर घर से पर हेड दस रुपये और बाजार में हर दुकान सौ रुपये बाँध कर वसूली की गई । सड़क पर दौड़नेवाली मोटर-ट्रक से मनमाना। ढीबा के ईशारे पर ही मोटर-ट्रक रोकने के लिए सड़क पर बाँस का बल्ला और बैलगाड़ी बीचो-बीच लगाई जाती थी और चंदा वसूलने पर ही हटाई जाए । काफी उत्साह था, चंदा वसूलने वालों में ।

ढीबा सिर्फ गद्दी पर बैठे-बैठे गाड़ी की गिनती लिखता । रुपये लिखने की जरूरत नहीं थी । रुपये तो बाँध दिये गये थे—ट्रक के पीछे बीस और सवारी वाली मोटर के पीछे पच्चीस रुपये । झारखण्ड से जोड़ने वाली यही तो एक सड़क है । ढीबू तो गाड़ी गिनते-गिनते ही परेशान होता रहता । इसी लिए गाँववालों के चन्दा पर उसका विशेष ध्यान नहीं रहता । कहीं से तो आँख मूंदनी होगी—बहुत कुछ पाने के लिए । इस राज को ढीबू बहुत अच्छी तरह से जानता है ।

अष्टयाम कल से शुरू होने वाला था, और मूढ़ी-घुघनी, कचरा-फुलौरी, गुपचुप का ठेला-खोमचा आज एक दिन पहले से ही शुरू था । बिके या ना बिके। पाँच रुपये —पर ठेला । माल नहीं बिके, तो पाँच रुपये का सामान कार्यकर्त्ता खा लेंगे—ढीबू की यही व्यवस्था थी । इस व्यवस्था से कार्यकर्त्ता खुश तो खोमचे वाले भी । वाह इसे कहते हैं धर्मी और भगत—अपने एक-एक आदमी का ख्याल रखने वाला ।

पूरा गाँव गनगना रहा था । ठाकुरबाड़ी के पीछे ही सटा हुआ बड़ा पीपल का पेड़ । उसी पीपल पेड़ के चार डाल पर चारो ओर स्पीकर लगाया गया था । दिन-रात भजन-कीर्त्तन तेज आवाज से गूंजता रहता । अब अष्टयाम था, तो एक भी पल रुकता कैसे । रात भर समूचा गाँव उमड़ता रहा । जो सोया पाया—वह मीर,

वरना अधीर । किसकी मजाल जो जाकर ढीबू को बोल सके—जरा स्पीकर की आवाज कम करवा दो । यह तो गनीमत समझिये कि इलाका भर में जगह-जगह पर स्पीकर तारों से नहीं जुड़वाया, वैसे तो ढीबा का विचार यही था । शहरों में यह व्यवस्था देखी थी । पीपल गाछ पर चार स्पीकर लगाने का जब पहली बार विरोध हुआ तो ढीबा ने कहा, ''जिस पीपल गाछ पर तैंतीस करोड़ देवता बसते हैं, उन सबों को क्या, इन्हीं चार स्पीकरों से भजन-कीर्त्तन सुनाया जा सकता है—एक करोड़ देवता के पीछे कम-से-कम एक स्पीकर लगेगा कि नहीं ? मतलब कि तैंतीस स्पीकर ।'' इससे ज्यादा बात करने की फुर्सत ढीबू को भी ना थी ।

उधर ढीबू के आदमी भी कम व्यस्त नहीं थे—रोज-रोज, ढीबू की कुछ-न-कुछ नयी खबर लोगों के बीच लाते—''आज उन्होंने इस पड़पड़ाती धूप में भी एक बूँद पानी तक नहीं रखा जीभ पर ।''

''आज उनकी एकदिवसी साधना थी ।''

''दो दिन से उन्होंने एक शब्द नहीं बोला ।''

''एकदम निराहार हैं तीन दिनों से ।''

ढीबू ने चुल्हाय काका के पैर पकड़ लिये । कैसी-कैसी बुद्धि लगा रहे हैं, आखिर किसके लिए—उसके लिए ही ना । चुल्हाय काका का भी मन भर आया। मन में कुछ बातें उठी थीं, वो भी धुल गयी, लेकिन ढीबू सधे हुए ज्योतिषी-सा उनके मन-मिजाज को पढ़ता हुआ पूछ बैठा, ''काका, यह मत समझियेग कि सतकर्म का फल बेकार जाता है । धर्म तो कपली गाय होता है, और कोई काम बेकार जाय तो जाय, कपली गाय की सेवा नहीं....काका जब मैं हरिद्वार में था, एक साधु की सेवा करता था, उन्होंने समाधि ली तो मैं उनकी समाधि स्थल की ही सेवा करने लगा। पहले तो वह समाधि स्थल पाँच हाथ की थी, दो साल में ही वह दस हाथ के जमीन पर फैल गया । भजन करता, प्रवचन करता, भीड़ लगती, फिर एक दिन जहाँ तक भीड़ लगी थी वहाँ तक बाँसबत्ती से घिरवा दिया । पैसा तो भादो के पानी सा झरता। यदि उस सन्यासिनी के फेरे में ना पड़ता तो क्या मैं यहाँ होता । चुड़ैल ने किस तरह मुझे अपनी माया में फाँस लिया । खुले बाल, हाथ में कड़ा और चुट्टा देखकर मेरी मति भ्रम में पड़ गई । सारे खजानों की मालकिन सब तरह से वही हो गई....लेकिन जाने दीजिए सब बातों को । मैंने तो आपका मन गमते हुए यह सब कह दिया, फिर यह भी बात है कि मेरे बाद ही आप ही ना धरमदास ।''

चुल्हाय ने एकदम नरम होते कहा, ''तुम जितनी बातें मन-ही-मन सोच गए ढीबू, उतनी दूर तक मैंने नहीं सोचा था । हाँ, इतना-सा जरूर सोचा था कि कि यदि इस अष्टयाम से मेरा व्यापार और बढ़ जाए, तो अपनी आढ़त अलग ही

लगाऊँ ।''

''होगा काका, यह भी होगा, लेकिन पहले अष्टयाम । और हाँ, बहुत सोच-विचार के बाद मैंने यह सोच लिया है—छाती पर कलश रखकर निराहार रहने का ।''

फिर क्या । सुबह होते ना होते खबर फैल गई कि ढीबू रामनवमी के ठीक नौ दिन पहले से रामनौवमी तक निराहार रहेगा, छाती पर कलश रखे हुए—ना मुंह में एक बूंद पानी जाएगा, ना दिशा-मैदान । यहाँ तक कि सबकी छाया से भी दूर रहेगा । देखकर भी कोई नहीं देख पाएगा ।

सब आश्चर्यचकित थे । फिर यह भी सोचते, कि ढीबा के लिए इतनी बातें सिर्फ ढीब नहीं हो सकती । पूरे इलाका में इस खबर से सनसनी है । लेकिन जोतखी काका को इन बातों पर बिल्कुल विश्वास नहीं है । कहते हैं, जो पेटू दिन भर में बीस बार ऊँगली जुठाता है, वह नौ दिन छाती पर कलश रखे हुए भूखा रहेगा, ऐसा हो ही नहीं सकता । सुनोगे, निराहार रहने का दिन आते ही गाँव से फरार हो गया है । विश्वास नहीं है तो देख लेना । और दिन ही कितने रह गये हैं—बस और तीन दिन ।

आज दो दिनों से ढीबा कुटिया से बाहर नहीं निकल रहा । यह बात सिर्फ चुल्हाय का को पता है कि वह क्यों बाहर नहीं निकल रहा—रिहर्सल कर रहा है, जब मन तब चित्त लेट जाता है, छाती पर भरा कलश रखकर और फिर आठ-नौ घंटे तक वैसे ही पड़ा रहता है...उस समय उसका मन एकदम चंचल होता रहता है, तरह-तरह की बातें उठती रहती हैं उसके मन में....दास बाबू की छाया उभरती है, सरपंच मुखिया की छवि उठती है और सबकी आँखें उसकी ओर ही उठी हुई.. उस समय ढीबा के होठों पर मुस्कान फैल जाती है और वह बुदबुदा उठता है....दास बाबू, आपके कारनामे किसी को नहीं मालूम है, वह तो मुखिया-सरपंच आपके पक्ष में हैं, बस इसीलिए, इस अष्टयाम में आपकी दरियादिली का मतलब मैं नही समझता क्या ? और फिर मैं नहीं देखता हूँ कि किस तरह सरपंच-मुखिया आपके पीछे लगे रहते हैं बिल्कुल दास की तरह । अब जो आपकी इतनी भक्ति करता है उसके विरुद्ध आप बोलियेगा भी तो कैसे । शिवाला तक मुखिया के अहाते में हो गया ....तब क्या कीजिएगा, भगवान को यही मंजूर है । वो कहते हैं ना कि भगवान तो भक्त की मुट्ठी में कैद होते हैं, तब मुट्ठी जिसकी जितनी मजबूत, वह उतना ही बड़ा भक्त और मुट्ठी मजबूत होने के लिए क्या चाहिए—हड्डी-माँस ? नहीं, इसके लिए चाहिए रुपये ।...यह जब मैं इतना उद्यम कर रहा हूँ, किस लिए ।

सोचते-सोचते ढीबू इतना खुश हो जाता कि वह छाती पर रखे कलश को एक ओर रख, स्प्रिंग वाले पुतले की तरह उछल कर खड़ा हो जाता है । धोती घुटने

से ऊपर उठा कर ढेका खोस ले और कमरे में 'ता-थै' का नाच करने लगे—कभी थोड़ा झुककर दोनों टांग फैला ले, कभी बारी-बारी से दाँया-बाँया कमर के बराबर उठा ले और कभी दोनों हाथ ऊपर नीचे करते कमरे की एक ओर जाए तो कभी दूसरी ओर । एकदम उन्मक्त हो उठता था ढीबू ।

थक गया तो कलश छाती पर रखकर वैसे ही दोनों हाथ कमर तक सीधा करते हुए चित्त लेट गया ।

और उस दिन तो सब के मुँह पर बस ढीबू की ही चर्चा थी । ठाकुरबाड़ी के ठीक पीछे, पीपल के पेड़ से थोड़ा हट कर आठ हाथ लम्बा और तीन हाथ चौड़ा गड्ढा खोदा गया—करीब पाँच हाथ गहरा । उसमें पुआल पर साफ-साफ गेरुआ रंग की चादर बिछाई गई और उसी पर जब ढीबू चित्त लेट गया—छाती पर धान से गुंथा गीली मट्टी की चकती रख कर और चकती पर भारी-सा कलश—जो आम के पत्तों से ढंका था, तो सबकी आँखे भर आईं ।

ढीबू ने एक बार नजर फेर कर सबको निहारा और फिर ईशारा किया । ईशारा करते ही गड्ढे के ऊपर तख्ता बिछा दिया गया । फिर तख्ते पर बित्ता भर माँटी की मोटी परत । जैसे गड्ढे पर तख्ता रखने से पहले ढीबू ने लोगों को देखकर आहिस्ता से हाथ जोड़ा था, वैसे ही, तख्ता पर मिट्टी रखते ही सबने ढीबू की जिन्दगी के लिए ठाकुर की ओर मुँह कर हाथ जोड़ लिये थे ।

जमीन की सतह बराबर हुई भर थी कि भजन-कीर्त्तन, ढोल-झाल की ऐसी आँधी उठी की पूछो मत । चार स्पीकर ही चार सौ का काम करने लगे । कुछ ऐसा ही कि अपनी बात कहने के लिए भी स्पीकर की जरूरत पड़े । गाँव भर के लोगों पर बस ढीबू की ही चर्चा ।

जैसे-जैसे दिन कटते गए, चर्चा भी गनगाती गई । रामनवमी और अष्टयाम के जिक्र की जगह ढीबू की ही चर्चा थी ।

आठवां दिन बीत रहा था । कल ही ढीबू बाहर निकलेगा । देखने वाले तो हद-हद हो-हो कर रहे थे ।

लेकिन यह क्या ? माँटी और तख्ता हटाया गया तो गड्ढे में ढीबू कहाँ था । बिछे चादर पर, ढीबू की जगह पर जैसे-तैसे बना और टूटा मिट्टी का आदमी था और धान के घास चारो ओर उगे हुए । गाँव-टोला और इलाका भर में यह खबर भादो के बाढ़ की तरह उफन उठी—ढीबू धरमदास ने देह त्याग दिया, मांटी की देह मांटी बना ली, किसी बात से उनका मन दुखित हो गया था ।'' खबर देने वाले की आँख लोरा रही थी ।

गड्ढा देखने वालों की तो लाइन लग गई । इंच भर भी जगह नहीं कि

पैरों के बीच से निकल कर कोई बच्चा भी वहाँ तक पहुँच जाए । लोग पीपल के पेड़ पर चढ़-चढ़कर गड्ढे में झांक रहे हैं ।

सबके चेहरों पर किस्म-किस्म के भाव हैं, लेकिन चुल्हाय के चेहरे पर एक ही भाव—यदि किसी तरह ढीबा पकड़ा जाय तो उसे इसी गड्ढे में जीते-जी दफना दूं । कलश में पानी रखने की जगह चंदे का लाखो रुपया रखकर गायब हो गया। जहाँ पैसे वाले कलश को गाड़ने की बात उसने कही थी वहाँ तो पानी से भरा कलश था । चुल्हाय को खुद पर बहुत गुस्सा आया कि उसने तभी एक बार मांटी खोद कर कलश क्यों नहीं देख लिया, जो ढीबा के गायब होने के बाद देखा ।

और चुल्हाय ने चट से एक कसा थप्पड़ अपने दाँये गाल पर दे मारा । उसके कान में जोतखी काका का खिलखिलाना सुनाई देता है, लेकिन चुल्हाय स्थिर ही बना रहता है ।

और वह जो चुप हुआ तो चुप ही हो गया । कुछ नहीं बोलता है ।

ढीबा का उस तरह से आलोपित हुए साल भर हो गया है । जहाँ से वह गायब हुआ था, वहीं पर अब एक लम्बा-चौड़ा समाधि स्थल है । समाधि पर लिखा है—ढीबा धरमदास समाधि स्थल । समाधि स्थल महीना भर में अपने आप एक हाथ बढ़ जाता है और उसके बढ़ते ही घिरी दीवार भी अपने आप हाथ भर बढ़ जाती है। कैसे बढ़ जाती है ? यदि कोई वहीं पीपल गाछ के नीचे बैठे चुल्हाय धरमदास से पूछता है, तो उत्तर देने की जगह वह सिर्फ उलटा रखा तख्ता सीधा कर दिखा देता है, जिसपर लिखा है—''धरमदास ढीबू के पुण्यफल से इस संसार में कुछ भी संभव है, कुछ भी आश्चर्य नहीं ।''

❐

एक सावित्री की मौत

''आपने ठीक पहचाना बाबू जी, यह वही बसमतिया है, छट्टू मरड़ की बेटी । लेकिन अब इसका नाम बसमतिया नहीं । अब यह अपना नाम रबिया खातून बताती है।''

''सो क्यों ?'

''बड़ी लम्बी कहानी है बाबू जी । सब तो बताना एकदम मुश्किल है । वैसे कौन नहीं जानता है—बसमतिया की कहानी । किसी से पूछिएगा तो विस्तार से बताएगा । अब तो गाँव का बच्चा-बच्चा जान गया है—बसमतिया की कहानी। बसमतिया न कहिए बाबू ! रबिया खातून कहिए !''

''लेकिन यह सब हुआ कैसे ?''

''क्या कहें बाबूजी, वह जो ननकेसर भगत था न ! अरे वही, पुरबी टोला वाला ननकेसर भगत, उसी का बेटा कर्कट ! क्या कहें बाबूजी, वह तो बसमतिया पर इस तरह लट्टू था कि बस ! गाँव-टोला भर में दोनों के प्रेम की चर्चा उड़ती रहती। यह भी क्या कम थी बाबू जी ! कहने को थी तेरह-चौदह बरस की, राधा के भी कान काटती थी ।''

''जात तो दोनों की एक ही थी । क्यों नहीं ननकेसर और छट्टू ने बातचीत करके दोनों की जोड़ी लगा दी ?''

''इस बारे में तो मैं क्या कहूँ, लेकिन इतना तो जानता हूँ कि बसमतिया की माय ने इस बात को लेकर कर्कट की दुर्गती कर दी थी ! समय का भी फेर देखिए, क्या सुमति-कुमति का चक्कर पड़ा कि बसमतिया का भी मन धीरे-धीरे कर्कट से उचाट होने लगा ।''

''सो क्यों ?''

''इस बारे में मैं क्या बताऊँ बाबूजी ! वैसे गोतिया-लोहिया का कहना है कि बसमतिया की माय ने उसे ओझा-गुनी का मन्तर पढ़ा बतासा खिला दिया था, देवघर का प्रसाद कह कर, उसी दिन से बसमतिया का मन कर्कट की ओर से उचाट

होने लगा था । लेकिन इटहरी वाली भौजी का तो कहना है कि बसमतिया को उसकी माँ ने कहा था कि अब से अगर तुम कर्कट से मिली-जुली, तो मैं उसकी चमड़ी उतरवा लूँगी और इसी डर से बसमतिया ने उससे मिलना-जुलना भी छोड़ दिया । लेकिन कर्कट इसे कहाँ छोड़ने वाला था । किसी-न-किसी वक्त कोई-न-कोई बहाने वह दिन भर में उससे मिल ही लेता । परेम भी अजगुत चीज होता है, बाबूजी—आदमी को नचा-नचा के रख देता है । और जब देवी राधा को ही नचा दिया—तब मनुष्य की क्या बात ! लेकिन बाबूजी, इस परेम से क्या किसी को यश भी मिला है ? बदनामी छोड़कर और क्या मिला है ? कर्कट की भी क्या दुर्गत न हुई ! क्या कहें बाबूजी, एक रात को बसमतिया की माँ ने घर के पिछवाड़े कर्कट को पाकर उसकी जुल्फी लचा-लचा कर वह पिटाई की कि पूछिए मत ! परेम करने का सब नशा ही उसका उतर गया । क्या जाने, भोर होते-होते कैसे यह खबर सबको मिल गई। पूरबी टोला से लेकर पछियारी और उतरवारी से लेकर दखिनवारी टोले तक किसने यह नहीं यह जाना ! कर्कट भी अपना कालिख लगा हुआ मुँह कहाँ-कहाँ छिपाता! तीसरे दिन जो गाँव को छोड़ा, तो अभी तक नहीं लौटा है । कुछ तो कहते हैं कि कर्कट ने कहलगाँव टीशन के नजदीक टरेन से कट कर जान दे दी । लाश छिनमान कर्कट से मिलती थी । लेकिन सुरेनमा अपनी आँखों देखी बात बताता है कि उसने पिछले साल में कर्कट को खोंचा बेचते जमालपुर टीशन में देखा था । अब कौन क्या कह सकता है बाबूजी, कि कर्कट जिन्दा है या मर गया.....।''

''लेकिन बासमती का यह हाल ?''

''मत पूछिए बाबूजी, कर्कट के जाने के बाद, साल भर तो बसमतिया का घर-दुआर से निकलना भी बन्द हो गया, नद्दी बारी तो करना छोड़ दीजिए । जर-जनानी क्या बातें कहती हैं, क्या सुनिएगा ।....आप को याद होगा बाबूजी, नहीं भी हो, तब महमूदवा, चार या पाँच साल का था ।''

''कौन महमूदवा ? वही इस्माइल का बेटा ?''

''हाँ-हाँ, बाबूजी, वही इस्माइल का बेटा । तब तो आप को याद ही है । बम बैजनाथ, मैं एक भी बात झूठ नहीं बोल रहा हूँ बाबूजी । महमूदवा का लक्षण मुझे भी ठीक नहीं लगता था, लेकिन गाँव-जवार की बात थी, कौन क्या बोले । वैसे जो कहिए बाबूजी, घरवैय्या को बुरा लगे न लगे, दूसरे-दूसरे को जरूर बुरा लगता था, घर-घर कानाफूसी तो चलती ही थी ।''

''तो तुम्हारा मतलब है कि .....''

''बम बैजनाथ, जो झूठ बोलता रहूँ । विश्वास नहीं हो तो गाँव के विंदेश्वरी पाण्डे, कैलू भगत, रामचन्नर मरड़, गोविन्द घोष—जिनसे भी हो, पूछ लीजिए । सभी

एक ही बात बताएँगे । ठीक ही कहावत है कि तिरिया का चरित्तर और पुरुष का भाग, भगवान भी नहीं जानते, आदमी क्या जानेगा ! यही बसमतिया जो कभी कर्कट के बिना चोइयाँ नुची मछली की तरह लगती थी, महमूदवा के साथ लटसट होते ही कैसी हलफला उठी थी । यह तो मैं आँखों देखी कह रहा हूँ बाबूजी । बसमतिया का फिर से नद्दी-बारी जाना शुरू हो गया था ।'

''तो इसकी माँ क्या बासमती को नहीं रोकती थीं ?''

''माँ क्या रोकती बाबूजी । जो अपने चरती रहती थी, वह बेटी को क्या रोकती, नारी धरम को ताखा पर रख दिया था बाबूजी !''

''तो दोनों का ब्याह क्यों नहीं कर देती थीं ?''

''अहा, वही कहाँ हो सका । माँ जो कुछ सोच रही थी, उससे तो बात ही छिना गई ।''

''वह क्या ?''

'आप तो जानते ही हैं कि ननकेसर को खाने-पीने का ठिकाना ही क्या था । घीच-तीर कर बसमतिया के जन्म तक तो किसी तरह चला, लेकिन उसके बाद तो बसमतिया की माँ बसमतिया को लेकर अपने चचेरे देवर खखरा के यहाँ ही पड़ी रहती थी । लेकिन आप ही कहिए बाबूजी, यह कोई अच्छा काम हुआ ? पेट की ज्वाला किसके पास नहीं होती । एक बार शरम जिसका साथ छोड़ देती है, तब तो जानते ही हैं बाबूजी । खखरा गाँव की ही पुलिस चौकी में रतजग्गी करता था । अरे बाबूजी, चाम जरता है तो किसे दुर्गन्ध नहीं लगती । किसी तरह दुर्गन्ध पुलिस वालों को भी लग गई । उसके बाद तो बसमतिया माय को उसे लेकर दिन-रात वहाँ पहुँचते कौन नहीं देखता था । मगर क्या जवानी भी जीवन भर की होती है बाबूजी, उसमें भी दस की हो कर, एक-दो ही साल में बसमतिया माय गुलगुलैन लगने लगी थी बाबूजी, और जब मोल घटा तब बसमतिया को महमूदवा के हाथ बेचने की बात सोचने लगी । नहीं मालूम, बसमतिया माय को किससे यह पता चल गया था कि इनरकास्ट बीहा से सरकारी पैसे के साथ-साथ सरकारी नौकरी भी मिलती है । पेट जो न कराए । एक दिन वह बसमतिया को-क्या कहते हैं उसे कोट-मैरिज? वही कराने के लिए गाँव से भोरे-भोर ही बाहर भेज दिया ।''

''तब ?''

''तब जो बबण्डर उठा ही न बाबूजी, गाँव में । भोरे-भोर खैरावाली, डुमरीवाली और गोलहट्टी वाली जो उधियाई कि क्या कहें । सात पुस्त का निनौन पुरा के रख दिया । आखिर पूछता हूँ बाबूजी, क्यों नहीं पुराती, गाँव-जवार की प्रतिष्ठा तो सभी पर होती है कि नहीं बाबूजी ?''

''लेकिन बसमतिया का यह हाल.....''

''वही तो बताना चाह रहा हूँ बसमतिया को लेकर महमूदवा जब गाँव चला गया, तब गाँव में भारी आँधी उठी । हिन्दू-मुसलमान की आँधी । एक तरफ हिन्दू-पट्टी के भोला पहलवान, जोगिन्नर यादव, रामकिसुन मिसिर की भीड़ और दूसरी तरफ मौलाना के साथ सभी मुसलमान पंचपट्टी वाला मैदान में जुटने लगे। मेरा कलेजा तो लोहार की धौकनी जैसा होने लगा था । वह तो ठीक टेम पर दरोगा इनिसपेक्टर आ गए थे बाबूजी ! दो बार हवा में फेरिंग की । बन्दूक की आवाज होनी थी कि एक-एक कर दोनों पट्टी के लोग खिसक गए । लेकिन महीना भर गाँव में डर बना रहा बाबूजी, ना हम लोग उधर जाते थे, न मुसलमान टोला का कोई भी इधर आता था ।''

''लेकिन यह बसमतिया ?''

''बसमतिया के बारे में ही तो बताने जा रहा हूँ, इसके लिए क्या-क्या न हुआ, लेकिन सब बताना मुश्किल बाबूजी ! टोले-टोले में पुलिस घूमने लगी । बसमतिया को खोजने । सरपंच बसूदत्त ने मियाँ टोली को चेतावनी दे दी थी, जो पाँच रोज में बसमतिया को हाजिर नहीं किया गया, तो मियाँ पट्टी की सब गुण्डागर्दी ठीक कर दी जायेगी । भला आप ही बताइए बाबूजी, इसमें मियाँ पट्टी का क्या दोष था । दोष जिसका था, उसे तो कुछ कहा नहीं जा रहा था। मुझे, जो साफ-साफ पूछिए तो बाबूजी इसमें सिर्फ दोषी है बसमतिया माय। इसमें इस्माइल का क्या ? महमूदवा का भी क्या ? दही बिल्ली के आगे में कीजिएगा तो चाटेगी ही, वह बिल्ली कारी रहे या गोरी ।''

''तब क्या हुआ ?''

''होना क्या था बाबूजी । गाँव में बसमतिया रहती तब तो ! लेकिन कौन कानून से बचा है बाबूजी ! दस रोज बीते न बीते कि दरोगा साहब ने पकड़ ही तो लिया महमूदवा को । मुंगेर का वह कौन टोला कहा जाता है, इस समय नाम भुला रहा हूँ । कहते हैं, सौ योजन के दूर की चीज गिद्ध को दिखाई पड़ जाती है। न जाने कैसे पुलिस को । अजब बरेन होता है बाबूजी । कैसे-कैसे न सच को उगलवा ही लेती है, और हुआ भी वही । ऐसा पेंच मारा कि, क्या कहते हैं उनको, जो मुसलमानों को शादी-बीहा कराते हैं, जो भी कराते हों, उनसे एक-एक कर सारी बातें उगलवा दी । तब क्या था ! वैसे जो कहिए बाबूजी, बीहा जब हो ही गया, तो इतना घिकवा-मंथन करने से फायदा ही क्या था ।''

''सो तो ठीक ही है । उसमें भी जब बसमतिया माँ ही चाहती थी ।''

''बसमतिया माय क्या चाहती थी और क्या नहीं, वह आप क्या जानिएगा।

बाबूजी, उसकी तो एक ही इच्छा थी—किसी तरह सरकारी रुपैया पाने की । लेकिन उसके मनसूबे पर तो जैसे पानी ही फिर गया । तभी तो उसने इस बबण्डर का विरोध नहीं किया । बल्कि घूम-घूमकर टोला से लेकर थाने तक यह कहती फिरती कि इस्माइल ने जानबूझ कर मेरे धरम को नष्ट करने के लिए मेरी बेटी को उड़वाया है..... हद हो गई । बाबूजी, पुलिस से तो लटसट थी ही । तभी तो पुलिस वाले ने भी जी-जान एक कर दिया । नहीं तो ऐसे एग्गी-दुग्गी परिवार के लिए पुलिस को क्या पड़ी है ।''

''तो तुम बसमतिया के बारे में कह रहे थे ।''

''कहने के लिए तो क्या बसमतिया पर ही, इस घटना से जुड़े बहुतों पर बहुत कुछ कहा जा सकता है । लेकिन क्या होगा कह कर । कहने से ही क्या हो जायेगा । अब तो बसमतिया को भी जिन्दगी में जो भोगना है, भोग रही है । देख ही रहे हैं । जो कहिए, पुलिस अगर महमूदवा को न पकड़ती....फिर महमूदवा को पकड़ के भी कहाँ पकड़ सकी ।''

''सो क्या ?''

''अरे क्या कहें बाबूजी, महमूदवा की जगह में इसे ही खींच-तीर कर थाना लाया गया । जिस समय बसमतिया थाना लाई गई बाबू जी, देखने वालों की क्या भीड़ थी । लगता था थाना में मेला लगा हो । मौगी, मरद, बूढ़े, बुतरू की ठसाठस भीड़ में ही जब बसमतिया से नाम पूछना शुरू किया तो क्या कहें ! लेकिन वाह, बसमतिया ने भी रबिया खातून छोड़कर कुछ भी दूसरा नाम नहीं बताया बाबूजी । पुलिस जब माय-बाप के नाम पूछती तो बसमतिया कहती, 'मेरे कोई माँ-बाप नहीं। जहल में भी रखी गई । लेकिन बसमतिया पर तो जैसे भूत सवार, हो गया था । बस एक ही बात कहती, मेरे कोई माँ-बाप नहीं ! मेरा नाम रबिया खातून है ।''

''तब ?''

''तब क्या ? डाक्टरी जाँच हुई । बसमतिया को कई दिनों तक कोर्ट-होस्पीटल ले जाने के बाद न जाने डाक्टर और पुलिस ने मिलकर क्या गिटपिट की और बसमतिया को छोड़ दिया ।''

''तो यह ससुराल जाने के बजाय यहाँ हटिया में सब्जी बेच रही है ।''

''नहीं तो और क्या करेगी बाबूजी ?''

''क्यों महमूदवा नहीं ले गया ?''

''ओह हो बाबूजी, आप को तो यह बताना ही भूल गया मैं कि जिस समय पुलिस ने बसमतिया को मुंगेर में पकड़ा, तब तो महमूदवा भी साथ था, लेकिन थाना पर लोगों ने नहीं देखा । क्या कहें बाबूजी, दस आदमी, दस तरह की बातें । कोई

कुछ कहता, कोई कुछ । बिरजू मिसिर तब तो हका-हका कर यही कहते थे कि पुलिस वाले ने पैसा लेकर महमूदवा को छोड़ दिया है । लेकिन नसीम मियाँ यही कहते फिरता था कि बसमतिया माय ने ही पुलिस को पैसा-कौड़ी दे कर महमूदवा को भगवा दिया, राज खुल जाने के डर से । कौन क्या कह सकता है ! लेकिन इतनी बात तो जरूर है कि महमूदवा ने, जब से गाँव छोड़ा है, फिर घूम कर उसकी छाया भी यहाँ नहीं लौटी ।''

''लेकिन बसमतिया के ससुराल वाले ?''

''आप भी क्या बात करते हैं बाबूजी ? बसमतिया से मतलब था, तो महमूदवा को । घरवाले को इससे क्या लेना-देना था । बल्कि पुलिस-उलिस का चक्कर देख कर तो घरवालों ने साफ-साफ कह दिया कि हमलोग कोई बसमतिया या रबिया खातून को नहीं जानते । महमूदवा ने अगर गलती की है तो जाकर उसे मारिए-डंगाइए । लेकिन, जो सच पूछिए बाबूजी तो भीतरिया बात कुछ और ही थी। स्माइल का साफ-साफ कहना था कि जो औरत जेल काट कर आई है, उसके चरित्र का क्या भरोसा ! इसी से बसमतिया को इस्माईल ने अपने द्वार पर चढ़ने भी नहीं दिया ।''

''यह तो बसमतिया के साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ ।''

''बहुत बड़ा अन्याय ! और क्या, इस पर भी बसमतिया ने अपने को रबिया खातून कहना नहीं छोड़ा । आज भी कहती है । लेकिन कहे अपने को भले कुछ । काम तो अब करती है मैय्या वाला। क्या करती ? सास-ससुर ने छोड़ दिया। माँ का द्वार लौटना ही नहीं था । नौड़ी के भी काम पर न तो हिन्दू रखने को तैयार थे, न तो मियाँ पट्टी के लोग । जब इसके लिए कोई नहीं रहा तब इसने सबको ही अपना बना लिया । पेट क्या न कराए । अब तो देख ही रहे हैं बाबूजी कभी सब्जी बेचती है, कभी अपने को । नजर घुमा कर देख न लीजिए ।''

गर्बी दयाल ने कुछ इस तरह से मुझसे कहा कि मेरी आँखें एक बारगी ही, अनायास बसमतिया की ओर पलट गईं । मैंने देखा—बसमतिया अब तरकारियों से भरी डाली अपने माथे पर उठाकर एक ओर चल पड़ी थी और अधेड़ उम्र का एक आदमी, जो कुछ देर पहले सब्जी का मोल-भाव कर रहा था, अब वही कुत्ते की तरह बसमतिया को पीछुआता जा रहा था ।

''सुरेनमा साला आक थू ! ऐसे लोगों को तो कमर से काट कर अलग कर देना चाहिए ।'' गर्बी दयाल की टनटनाती गालियाँ तेज होने लगी थी । मुझे लगा । जैसे मेरे हृदय का सारा खून एक बारगी ही बलबला कर बाहर निकल आया हो और बसमतिया का सारा शरीर ही खून से लथपथ होने लगा हो । ❐

रैन भये चहुँ दिस

पाँच दिन पहले भी इतने ही जोरों से वर्षा हुई थी । कोशी और गंगा मिल कर एक हो गई तो उसकी तांडव लीला कटिहार से लेकर नौगछिया तक फैल गई। कटिहार का बस यही गाँव था, जो बच गया था । आज तक नहीं डूबा है, चाहे कितना भी बहाव क्यों न आ जाए । इस गाँव के बारे में यहाँ के लोग यही जानते हैं कि समूचा इलाका डूब जाए, तो डूब जाए यह गाँव किसी भी प्रकार नहीं डूब सकता । औघड़ बाबा ने अपनी मशानी हड्डी से इस गाँव को घेर दिया है । यह बात आज की नहीं है हजार, दो हजार साल पहले की बात है.....न जाने वह औघड़ कहाँ से आया था और इसी उतराही कोने से सटे शमशान में जम गया । चार कट्ठे के जमीन पर घने वट-वृक्ष के नीचे । न कुटिया और न ही आसन । सावन-भादो का महीना था । कोशी में ऐसा उफान आया कि पूछो मत। औघड़ का तो कुछ बिगाड़ नहीं पायी, हाँ वट वृक्ष को जड़ से उखाड़ते हुए बह गई । औघड़ का गुस्सा तो ऐसा बढ़ा कि जैसे ऋषि जह्नु की तरह ही कोशी को अंजली में लेकर पी जायेंगे । सात दिन तक पानी के बीच में खड़े रह गए—बिल्कुल निराहार, और जब बहाव उतरा तो उस औघड़ ने एक हड्डी लेकर इस गाँव की सीमा को ही बाँध दिया । उसी दिन से कोशी कितना भी उछाल मारे, इस गाँव में नहीं घुस सकती.....गाँव के बूढ़े-पुरानों से यह कहानी सुनी है किसना ने, झूठ थोड़े ही हो सकती है ।

रात के घने अन्धकार में किसना ने आँख उठा कर देखा—बाप रे बाप, कैसा अन्धकार, जैसे काली माँ ने अपने देह का रंग पोछ कर समूचे इलाके के देह पर पोत दिया हो । सब कुछ काला-काला, कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा । बस गंगा और कोशी की उमड़ती धारा की आवाज । जैसे काली माँ रेत पर छम-छम नाचती हो । उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह आवाज उसी की ओर दौड़ती आ रही हो । उसका सारा शरीर सिहर उठा ।

''किसुन काका होऽ ऽ ऽ ।''

''कौन नरेनां आ आ ?'' किसना ने अन्धेरे में ही आवाज लगाई ।
''हाँ मैं ही हूँ काका, बाकी सभी पार उतर गए, काकी ने कहा है—फसल के लिए जान जोखिम में न डालना ।''

इसके बाद कोई आवाज नहीं आई और न ही किसना ने फिर आवाज दी।

उसकी आँखों के सामने अचानक ही केले की खड़ी फसल उब-डुब करने लगी । ऐसा लगा—जैसे वो अपने ही हाथ से अपना दोनों हाथ चूर लेगा, लहुलुहान कर लेगा, ताकि वह फिर कभी किसी भी प्रकार की खेती करने के लायक न रहे।

घंटा भर हुआ होगा, पानी खूब झमाझम बरस कर रुक गया था । दालान पर घूमते हुए बेचैन किसना ने सोचा—इस बहाव से अगर उसकी केले की खड़ी फसल बर्बाद हो जाती है, तो वह किसी को दोषी भी तो नहीं ठहरा सकता । लछमनिया ने भी तो मना किया था, कहा था, ''अपने पास जो कुछ जमीन-जायदाद है, और इससे जितना भी मकई-गेहूँ की फसल हो जाती है, उससे परिवार का पालन-पोषण तो हो ही जाता है, फिर केले की खेती के झमेले में क्या फँसियेगा । ज्यादा हाय-हाय करने से ही क्या होगा, परेशानी ही होगी और फिर बचे हुए समय का सुख भी सपना हो जायेगा ।''

लेकिन किसना ने अपनी पत्नी लछमनिया की बात कहाँ मानी थी । उसने देखा था कि किस प्रकार दस साल के अन्दर नौगछिया, कटिहार, पूर्णिया, खगड़िया के छोटे-छोटे किसान केले की उपज कर माला-माल हो गए थे । वही किसान, जो पहले कलाई, अरहर, मकई की खेती करते थे, तब तो उनकी जिन्दगी ऐसी खुशहाल नहीं थी कि वे अपने बेटों को पटना या फिर भागलपुर ही भेज पाते । आज तो उन्हीं में से कई के बच्चे दिल्ली और बनारस में पढ़ते हैं । मेरे ही मुहल्ले का यह परमेसरी पाँच साल पहले मुझ से ही पाँच सौ रुपये ले गया था, पाँच दिन में ही लौटा देने के नाम पर और साल भर में नहीं लौटा पाया । आज महाजन बना हुआ है—केले की खेती पर ही । सब को मालूम है, परमेसरी महीने में सात-आठ हजार रुपये अपने बच्चे के लिए दिल्ली भेजता है और वह हरकरिया जो कल तक दसो कोस पैदल चल कर ग्यारह-बारह बजे रात को घर पहुँचता था, आज उसके पैर कार से नीचे नहीं होते हैं.....जब उसकी कार गाँव में घुसती है तो माँटी के उबड़-खाबड़ रास्ते को पार करते हुए सीधे उसके घर पर ही रुकती है । सब केले की खेती का ही कमाल है । अब तो यही परमेसरी हमलोगों से भी अंग्रेजी में ही बात करता है, बाप-दादा की भाषा ही भूल गया । खड़ी बोली भी बोलता है तो उसमें भी तीन-चार अंग्रेजी शब्द दाल में फोरन की तरह डाल कर ही । जैसे चौबटिया वाला पनेड़ी अपने पान में ऊपर से कत्था जरूर डालता है, भले ही कोई चाहे-न-चाहे और परमेसरी के दोनों

बच्चे, वो दोनों तो खैर हिंदी जानते ही नहीं—परमेसरी ने तो जैसे किसी अंग्रेज के बच्चे को गोद ले लिया हो.....।

सोचते-सोचते किसना का मन कैसा ही हो उठा था, बिल्कुल कड़ुवा । लेकिन आधा-एक मिनट के लिए ही । तुरन्त ही नरम पड़ते हुए उसने सोचा, ''उसने भी तो केले की ही आमदनी से अपने बच्चों को दिल्ली बनारस तक पढ़ाने की बात सोची है—भले ही अपने बाप-दादा की जुबान में—आखिर यही सोच कर कि हिन्दुस्तान में जन्मा है तो हिन्दी नहीं बोलेगा तो क्या बोलेगा । जानी हुई बात है—यदि अपने बाप दादा की भाषा नहीं बोलेगा तो अपने समाज, अपने देश-दुनिया का दुख-दर्द ही क्या समझ पायेगा.....लेकिन यह सब तो बाद की बात है । जो भी पढ़े और जैसे पढ़े—पढ़ने के लिए पहले चाहिए रुपया । अपने देश में अब तो धन के बिना शिक्षा की पूँछ पकड़ना भी मुश्किल.....। लछमनिया कहती है, केले की खेती न करने को । क्या वह यह बात नहीं समझती कि इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता भी क्या है । एक तो भगवान ने इस इलाके की मिट्टी ही ऐसी बनाई है कि केला ही इसमें सबसे अच्छा उपज सकता है और दूसरी बात यह है कि आन खेती में रुपये पैसे लेकर उतनी परेशानी तो नहीं ही है । खुदरा-खुदरा खर्च करो, एक मुश्त पैसा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती है, तो अखड़ता भी नहीं है । आन खेती में तो चोट पर चोट । केले की खेती में खुदरा-खुदरा लगाओ और हर बार थैला भर-भर कर रखो । परमेसरी मूर्ख नहीं है जो केला खेती नहीं छोड़ता । एक बार नहीं, कई बार तूफान-अन्धड़-बतास ने उसके खेत के खेत केले के पेड़ उजाड़ दिए हैं, तो क्या उसने यह खेती छोड़ दी.....लाभ-हानि सोच-समझ कर ही तो.....और इसीलिए तो किसना ने पहले परमेसरी होने की बात सोच ली थी । सभी तरफ से हिसाब-किताब बैठा कर उसने देखा कि मकई और गेहूँ की खेती की जगह केले की खेती को पकड़ने में ही फायदा है । तब उसने लछमनिया की एक बात नहीं मानी और सामाचरण बाबू से सूद पर बीस हजार रुपये ले आया ।

सूद पर रुपये लेने से पहले किसना अपने मित्र जोगेसर से भी मिला था। बात तो यही थी कि जोगेसर ने ही सूद पर कर्ज लेकर केले की खेती करने की सलाह उसे दी थी । सलाह ही नहीं, यह भी समझाया कि केले की एक खानी पर बीस से पचीस रुपये का मुनाफा है । एक एकड़ में यदि वह छः हजार रुपये लगा देता है, तो बारह हजार उसके अपने हैं समझो ।

सुनते ही किसना का मन झूम उठा । उसने किया भी वही और साल के आते-न-आते किसना के खेत भी केले के पेड़ से लहलहाने लगे । केले के हरे रंग से ज्यादा उसका मन हरा हो गया था । उसका ही नहीं, लछमनिया का भी । अपनी

भूल को मानते हुए तथा किसना के साहस की सराहना करते हुए बोली—''जन्हैं कार्टे वौंन ।''

सचमुच ही किसना ने अपनी लगन और संघर्ष से हर तरह की मुसीबत के जंगल को काट-छांट दिया था ! कितनी मेहनत से पटा-पटा कर उसने केले के कंद को खड़ा किया था । समय-समय पर कोड़ाई के साथ-साथ दवा का छिड़काव तक । किसना को मालूम था कि केले के पेड़ की सबसे बड़ी बीमारी है—बांझी । यदि लग गई तो एकेक पौधा सूख-सूख कर सन-सनाठी बन जाए ।

इसी डर से लछमनिया तेबारी स्थान में कबूलती भी गछ आयी थी और मन ही मन यह भी कबूल आयी थी कि यदि फसल ठीक-ठीक उतर गया तो वह स्थान को जरूर ही पक्का करवा देगी ।

तब कौन जानता था कि ऐसी बारिस होगी । हथिया में सताहा । दस दिन पहले किसना को बहाव की चिन्ता न थी । चिंता थी तो बस इसकी कि कहीं केले पर चित्ती न पड़ जाए । चित्ती लगेगी तो व्यापारी ना-नुकुर करेंगे, बीस का माल दस में मांगेंगे; ऐसे केले को वे छूना भी नहीं चाहते । जगेसर के साथ रह कर किसना व्यापारी की चालबाजी से खूब परिचित हो गया है । लेकिन चित्ती लग गई तो वह करेगा भी क्या । कम में नहीं बेचेगा तो क्या फसल खेत में में ही सड़ाएगा । इस इलाके में इतनी बड़ी मंडी भी तो नहीं कि फसल वहीं जाकर बेच आए । बस ले देकर धनबाद, पटना, लखनऊ और बनारस । और यदि कोई किसान चाहे कि ट्रक ठीक कर अपनी फसल को ही वहाँ बेच आऊँ तो समझो उसकी तरह बड़ा मूर्ख और कोई नहीं । किसना को खयाल आया—पिछले साल आन में छंगुरी काका ने यही किया था—ट्रक ठीक कर उसपर केला लदवाया और पहुँच गये पटना। सोचा, दो का चार बनाऊँगा, और हुआ क्या ? वहाँ तो केला पहले ही बाजार में भरा हुआ था । छंगुरी काका को क्या मालूम कि पटना में केले का दाम कम हो गया है । अब लौटा कर भी क्या ले जाते । पैसा-कौड़ी के अभाव में आखिर छंगुरी काका ने घर से घाटा सहकर फसल बेच दिया और ऐसा टूटे कि दस साल तक खेती की बात तक नहीं सोच पाए ।

किसना ने सोचा—छंगुरी काका का खेत तो सड़क के किनारे है । व्यापारी को ट्रक लाने में भी कोई दिक्कत नहीं है । जबकि मेरा खेत तो सड़क से बहुत हट कर दूर पर है, ट्रक नहीं पहुँच सकता । बैलगाड़ी पर लादकर पहले सड़क तक लाओ, इसमें अलग खर्च । किसना मन-ही-मन चिढ़ते हुए बुदबुदाया, ''आखिर गाँव के मुखिया इतना भी क्यों नहीं करते कि गाँव में ही एक ऐसा बाजार हो, जिसमें मेरे समान मंझले किस्म के किसान अपना माल बेच आएँ ।

गंगा-कोशी में सावन-भादो का उफान आने के ठीक दो महीने पहले की बात है; किसना से परमेसरी ने कहा था, ''गाँव वाले यदि मिल-जुल कर शिवराज बाबू को मुखिया से विधायक बना दें, तो किसी भी कीमत पर यह तो तय ही है कि वे विधायक से मंत्री बन जायेंगे, और मंत्री बनते ही वे जो पहला काम करेंगे, वह होगा कटिहार में केला से जेली बनाने का कारखाना खोलवाना, यह मैं नहीं कह रहा किसन, शिवराज बाबू ने स्वयं ही धानुक, कोरी, यादव टोली के पाँच सौ आदमी के बीच कहा है, और तुम ही सोच-विचार कर देखो किसना, यदि ऐसा हो जाता है, तो केला बेचने के लिए किसानों को न बाहर जाना पड़ेगा और न ही मजदूरी के लिए दिल्ली और पंजाब भागना पड़ेगा । बस अपने टोले से वोट दिलवा देना किसन । अपने टोले पर तुम्हारी पकड़ है, यह बात तो सभी जानते हैं ।''

किसना ने उसकी बात चुप-चाप सुन ली थी । बोला कुछ भी नहीं । वह जानता था कि यह सब कुछ नहीं होगा, कहने-सुनाने के लिए जितना कह-सुना ले। वैसे जब तक परमेसरी कहता रहा, तब तक उसे ऐसा ही लगा कि उसके दुख-दलिद्दर जाने ही वाले हैं—लक्ष्मी घर, दलिद्दर बाहर । और जब परमेसरी अपनी बात कह गया, तो ज्यादा तो नहीं, किसना ने इतना जरूर सोचा कि शिवराज बाबू विधायक मंत्री बनने पर यदि कुछ नहीं भी करेंगे, तो इतना तो जरूर ही करेंगे कि इस गाँव के कच्चे रास्ते को पक्का बनवा देंगे—पक्की सड़क तक । आखिर शिवराज बाबू को मौका-दर-मौका इस गाँव आना-जाना तो पड़ेगा ही । यदि सड़क बन जाती है, तो इस बार वह भी बैलगाड़ी से नहीं, सीधे टैक्सी करेगा और लछमनिया के साथ भोला बाबा के दर्शन के लिए सिंघेसर स्थान पहुँचेगा । लछमनिया यह बात कई बार कह चुकी है । इस बार बाबा की कृपा से फसल भी वैसी ही लहलहा रही है । इस फसल से इतना तो वह जरूर करेगा । चौधरी जी का पूरा कर्ज चुकाने के बाद भी उसकी मुट्ठी में इतने रुपये तो बच ही जाते हैं कि अगले आषाढ़ में केले के कंद को रोप सके । किसना ने मन-ही-मन पूरा हिसाब-किताब लगाया था।

पर उसे क्या मालूम था कि भादो के जाने के बाद ऐसी बारिश होगी । पाँच दिन पहले जब सताहा लग कर बरसा रुक गई थी और मौसम वैज्ञानिकों ने इसकी घोषणा कर दी थी कि अब बाकी साल में मौसम सूखा-सूखा ही रहेगा तो किसना को बहुत राहत मिली । लेकिन उसे क्या मालूम था कि मौसम वैज्ञानिक की भविष्यवाणी और सड़क के किनारे का पिंजड़े में बंद तोते का भाग्य बताना—दोनों बराबर ही ।

छठा दिन बीतते-न-बीतते सुबह से ही वही प्रलयकारी बरसा शुरू हो गई। किसना ने सुना—समस्तीपुर, खगड़िया के बाद अब कटिहार के भी कई गाँव डूबने

वाले हैं । नौगछिया तो पानी पर ही तैर रहा है । किसना ने मन-ही-मन सोचा—मनिहारी घाट में जों पानी सतह से ऊपर उठा, तो समझो उसका गाँव नहीं बचने वाला ।

लेकिन ऐसा नहीं हो सकता । किसना ने फिर मन-ही-मन सोचा—गाँव के पूर्वज जो औघड़ वाली कहानी कहते हैं, वह झूठ नहीं हो सकती । और कुछ भले ही हो जाए, इस गाँव को कोशी छू नहीं सकती । और यह सोचते ही उसे लगा, जैसे उसने तेज बहाव में बहते हुए किसी पेड़ का सहारा पा लिया हो। ''क्या सचमुच ही उसका गाँव बच जाएगा, यदि कोशी आखरी तक उमड़ी तो। उस समय औघड़ के वचन क्या करेंगे । सुना है, एक बार बाली की तरह एक बलशाली राक्षस ने कोशी को बाँधने की कोशिश की थी—रूप से मोहित होकर । बँध ही पाई थी क्या वो । तो औघड़ के मंत्र से क्या बँधेगी कोशी माँ ।'' किसना एकदम से काँप उठा । उसके हाथ में आया पेड़ गोता खाकर कहीं दूर निकल गया—बहुत सारे शंकाओं के थपेड़े खाकर ।

किसना सोचने लगा—आज सुबह से ही जिस तरह की वर्षा हो रही है, रुक-रुक कर, उससे तो यह नहीं लगता कि यह गाँव किसी भी तरह बच पायेगा। आस-पास के नजदीकी गाँवों में तो तैरने भर पानी छप-छप कर ही रहा है । समेली, तिनघरिया, बोखरी, अमोध्यागंज, मजडीहा के लोगों ने नाव पर बैठ-बैठकर अपने घर-द्वार छोड़ दिए—आदमी-औरत, बच्चे-बूढ़े सभी नाव-डेंगी पर बैठ कर । बस दो-एक छवारिक ही हरेक घर में रह गए हैं । बहुत जिद कर उसने भी लछमनिया को चढ़ा दिया था, बेटे और देवर को साथ लगाकर ।

किसना ने सोचा, यह तो उसने अच्छा किया कि लछमनिया की जिद पर घर की छत पर माँटी-गारा पर ईंट की एक छोटी-सी कोठरी और बना ली थी । न जाने क्या सोच कर वह उठा और बाँस वाली सीढ़ी छत से लगाकर ऊपर चढ़ गया। किसना ने झाँक कर देखा—बाँस भर की दूरी-दूरी पर नाव रेत पर बह रही है, जिसपर औरत बच्चे-बूढ़ों के साथ गाय-बकरी-भैंस तक लदे हुए हैं । नाव बड़ी तेजी से बढ़ रही है । किसना ने आकाश की ओर देखा । काले-काले मेघ मलका साँप की तरह ही ठनक रहे हैं—आकाश साफ उखेल होने से ही क्या, कभी भी जोरों का पानी पड़ सकता है ।

उसकी दोनों आँखें खुद-ब-खुद बंद हो गईं और दोनों हाथ उठ गए माँ कोशी की प्रार्थना में । आँखें मूंदी तो कुछ देर के लिए मूंदी ही रह गईं । कानों में छप-छप की आवाज के साथ मनौन के गीत गूंजने लगे,

सगरे समैया कोशिका हँसी खेली बितैलियै से भादो मासे
कोशी माय लागै छै पहाड़ से भादो मासें

एक तें अन्हार राती दोसर बरसात घाती सूझै नहीं
मैया गे रेत के बहाव सें गे सूझै नाहीं
मलरी-मलरी कोशिका करै अनघोल सें नदी बीचें
कोशी माय मन डरयाय से नदी बीचें ।

पहचानने में देर न लगी । ओढ़ैया के दादी की आवाज थी, ''तो क्या हरिबोल भैया भी गाँव छोड़ रहे हैं ।'' किसना के मुँह से आवाज निकली और फिर वह पागलों की तरह ही अपनी छत पर चक्कर लगाते हुए बोला—''हरिबोल भैया भी छोड़ रहे हैं, तो क्या आश्चर्य । इस बार उन्होंने खेती-बारी भी तो नहीं की है। कौन-सा मोह होगा । लेकिन मैं कैसे छोड़कर चला जाऊँ । उसकी आँखों में अचानक ही केले के लहलहाते पेड़ नाचने लगे, जैसे सेना के सैनिक की जमात कोई उत्सव मनाती हो ।

''किसना काका, नाव लिए हुए परमेसरी काका पुबारी टोले के उस छोर पर हैं । कोशी का बहाव गाँव में घुस आया । समेली, तिनघरिया, बोखरी, अयोध्यागंज, मजडीहा सब हेलम-हेल होने लगे हैं । काका, आपको जल्दी बुलाया है । नाव खोलेंगे ।'' आँगन से अठारह साल के एक लड़के ने हाँक दी ।
''क्या ?'' किसना को काटो तो खून नहीं । एक क्षण के लिए काठ बन गया ।
''हाँ काका, जगेसर काका ने एकदम जल्दी बुलाया है ।''
''बिलटा'' किसना ने तुरंत अपनी हालत पर काबू पाते कहा, ''जाओ जगेसर को कह देना, वह नाव लेकर निकल जाएगा, जिसे-जिसे ले जा सकेगा, ले जाएगा, लेकिन मैं नहीं जाऊँगा ।''

किसना ने देखा, बिलटा ने उसकी पूरी बात सुने बिना ही उड़ान भर दी थी । कुहराम मचने लगा । हजार, दो हजार आदमियों की आवाजें, एक लाख आदमियों के शोरगुल में बदल गई । किसना ने समझ लिया कि कोशी औघड़ के बांधे हुए रेखा को भी लांघ गई है । रेखा लांघ गई, तभी तो यह हाहाकार है । बैरिया, करबोला, पहाड़पुर, जमरा, अमबड़िया और गोरबा गाँव तो पहले ही बाढ़ में डूबने लगे थे, अब यह इलाका भी जलमग्न । जब समेली, तिनघरिया और मजडीहा ही डूब गए तो उसका केले का खेत कैसे बचा होगा । इन्सान तो छत पर चढ़ गए होंगे, पेड़ पर भी चढ़ गए होंगे, लेकिन खड़ी फसल ? वह तो.....कल जब सुबह होगी तो केले के पेड़ कटे-मरे सैनिकों की लाशों की तरह इधर-उधर पानी पर तैरते नजर आयेंगे । लेकिन अब सुबह होगी क्या ?

सोचते ही किसना की आँखें खुद-ब-खुद बंद हो गईं । और बंद आँखों से ही उसने अपने खेत के एक-एक पेड़ को देखा—एकदम क्षत-विक्षत । जैसे

धृतराष्ट्र ने मूंदी आँखों से कुरुक्षेत्र को देखा था । किसना की छाती फट कर रह गई। उसका मन हुआ—वह उठे और हमेशा-हमेशा के लिए यह गाँव छोड़ कर चल दे । रहे कोशी माँ ही और पंचतल्ला हवेली में बाबू शिवराज जी ।

लेकिन कहाँ जाएगा किसना ? इस गाँव में तो किसना की पत्नी का ही नहीं, उसका भी सपना गड़ा है—एक नहीं, कितने सारे । फिर कन्नू चौधरी ? सपना ही नहीं गड़ा है—कन्नू चौधरी का कर्जा भी गड़ा है—हल की तरह उसकी छाती में।

आकाश काले-काले बादलों से वैसे ही लदा हुआ था । मलका का वैसा ही मलकना, बिजली का अभी भी वैसा ही चमकना । बूंदा-बूंदी नहीं हो रही थी, लेकिन उसी रात से किसना की आँखों से जो बूंदा-बूंदी शुरू हुई, वह आज तक नहीं रुकी है ।

❐

पगलवा मर गया

''सुना, पगलवा मर गया ।''

''आंय, क्या बोल रहे हो, पगलवा मर गया ।''

''झूठ थोड़े ही बोल रहा हूँ.....वैसे जो कहो, लोग उसे पगलवा भले कहते थे, बातें उसकी पागलों वाली नहीं थी ।''

''बात हो कि ना हो, हर बात पर उसका भाषण और चिढ़ना उसे पागल ही सिद्ध करता था ।''

''सो तो ठीक ही कहा...लेकिन जो कहो, अब उसके बिना घर, गली, मुहल्ला, चौराहा—सब सूना-सूना लगेगा ।''

''धत् । सूना क्या लगेगा, उससे तो सब तंग ही थे—घरवाले से लेकर गली-मुहल्ले वाले तक । पता नहीं, कितना बड़ा महात्मा बुद्ध और चाणक्य खुद को समझता था वह ।''

''लेकिन जो भी कहो । बातें बुद्धि वाली कहता था ।''

''धत् ! क्या बोलता था, माथा चाट जाता था । अब तुम्हीं बोलो—घर के कूड़े-कचरे को लोग घर से बाहर नहीं फेकेंगे तो कहाँ फेकेंगे । सोचो, सौ घरों की गन्दगी एक ही जगह जमा होगी तो ढेर नहीं लगेगा क्या ? अब यही बात लेकर वह दिन भर भिनकता रहता । किसी को सीधे बोलने का दम तो था नहीं—कूड़े की ओर मुँह कर फदकता जाता अरबी-फारसी, अंग्रेजी में—जिसमें जब सुर चढ़ गया, बस उसी में ।''

''एक सुराहा था । फदकना शुरू हुआ तो रुकने का नाम नहीं । इन्हीं बातों से तो उसके घरवाले भी तंग थे ।''

''तंग नहीं आयेंगे । छोटी-छोटी बातों के लिए वह इस तरह बहू-बेटियों पर झुंझलाता रहता कि पूछो मत । जरा-सा बर्तनों की आवाज हुई कि उधर से उसकी आवाज झांझे की तरह झनकी—रसोई घर है कि कारखाना ? मार ठांय-ठांय किया जा रहा है सुबह से ।''

''यह बात भी नहीं थी कि बात के खत्म होते वह वहीं पर रुक जाय, बर्त्तन-वासन से शुरू हुआ तो तुरंत दूसरी बात पर लगे ही तीसरी बात पर ।''

''घर भर को उधिया कर रख दे । एकदम तंग-तंग कर मारता । अब तुम्हीं बोलो ....खैर उसके डर से कोई बच्चे तो टी. वी., रेडियो नहीं ही चलाते, अगर पड़ोसी भी टी. वी. बजाते, तब उसका मिजाज देखते । मुझे तो कई बार देखने का मौका मिला था—भन्न-भन्न करता रहता—अपनी कोठली से पड़ोसी की दीवार तक जाकर फदकता 'यह मुहल्ला तो जैसे शाह मार्केट बन गया है ।' पत्नी की ओर जा-जाकर कहता—शाह मार्केट में ही जाकर घर क्यों ना खरीद लिया । कान तो है नहीं, कान तो मेरे फटते है—लगता है जैसे कान में ही कंडाल बजते हों ।''

''तुमने यह बात बोली तो मुझे याद आया, श्रावनी पूजा का दिन था । फांड़ी के सामने वाले गोवर्द्धन मंदिर के कंडाल का मुँह उसी ओर था, जिधर पगलवा का घर। जब मैं उसके घर पहुँचा तो देखा, कंडाल की आवाज से ज्यादा वह बज रहा था । अपनी दोनों बेटियों पर बरस रहा था—तुम लोगों के ऐसे परिवैतिन के कारण ही कंडाल चंडाल की तरह बज रहा है । ग्राहक जितने बढ़ेंगे, दुकान उतनी ही सजेगी, यह तो जानी बात है ।''

''फिर तो परवैतिन के साथ-साथ पगलवा का भी उपवास हो गया होगा ?''

''एकदम ठीक कहा । बकबक करते, घर से निकला तो दिन भर के लिए निकल ही गया । दिन भर आसरा देखता रहा कि घर लौटे तो श्यामसुन्दर घोष वाली कविता-पुस्तक ले लूँ । कई दिन हो गये—माँगूं तो कहता—अभी तो कुछ पंक्ति ही पढ़ी है । पढ़ता था कि गीत के गोड़ जाँतता था, पता नहीं ।''

''अरे, तुमने घोष जी की वह किताब क्या दी थी, सब के लिए विपत्ति का पिटारा दिया था । एक दिन मैं उसी वक्त पहुँच गया, जिस समय वह वही किताब पढ़ रहा था । मुझे देखते ही ईशारे से बैठने को कहा और सुनाने लगा—गीत में यह जो नदी, जंगल, पहाड़ झरने की बात कवि ने की है, और जिस तरह सरकार से लेकर ठेकेदार तक पर्वत-जंगल उजाड़ रहे हैं, तब कवि का क्या होगा, कविता का क्या होगा, नदी का क्या होगा, सबसे बड़ी बात कि नदी का क्या होगा !'' हर साल बनी सड़क को ही बनाया जा रहा है । साल भी पूरा नहीं होता कि सड़क की गिट्टी-छर्री नाली में । फिर पहाड़ को काटिए-तोड़िए और सड़क पर बिछाइए । अरे लोग समझते क्यों नहीं कि सड़क तो हजारों बनाए जा सकते हैं, लेकिन पहाड़ क्या वे दोबारा बना भी पाएंगे ? अरबों साल उथल-पुथल के बाद एक पहाड़ मिलता है, लोग समझते नहीं हैं, दनादन तोड़ते जाते हैं ।''

''एकदम पागल था, कोई बात मिलनी चाहिए, बस उसी पूँछ को लंका में हनुमान

की पूँछ बना ली । जो चीज कोई सुनना भी नहीं चाहता, उस पर वह घंटा भर सोचता ...ही..ही..ही..ही ।''

''यही कहते हो, एक दिन की बात सुनो। वह अपने ही मुहल्ले के बैजानी चौधरी से लड़ गया । अब भला तुम्हीं सोचो—कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली.....। चौधरी जी मंत्री हुए, दस पुलिस तो संग-संग ही लगे रहते थे....वह तो वहीं ठोका जाता, समझो कि औरदा नहीं पूरा था ।''

''लेकिन वह भिड़ गया किस बात पर ?''

''अरे बात क्या होगी । वह जो पुलिया नहीं टूटी थी और उसमें दस मजदूर दब कर मर गये थे ना, चौधरी जी ने कहा कि एक-एक मजदूर को दस-दस लाख मिलेगा, और साथ ही साथ एक-एक परिवार के एक-एक आदमी को सरकारी नौकरी भी ....बस उसी बात पर...मैं पूछता हूँ, मंत्री रुपये या नौकरी देते की नहीं देते, उसे लबर-लबर क्यों करना था....वह तो कहो कि चौधरी जी कि अमला-कफलों ने उसकी कॉलर पकड़ कर धकेल दिया, नहीं तो जिस तरह पुलिस वाले सावधान हो गये थे कि उसी समय उसे नैक्सलेट कह कर ठोक देते ।''

''बताओ, उस तरह अपमानित होने के बाद भी उसमें कोई सुधार था क्या ?''

''सुधार कहते हो, अरे वह तो ऐसा पागल था कि कांके के डॉक्टर भी अगर उसका इलाज करते तो डॉक्टर सब ही पागल हो जाते, उस पर भी वह ना सुधरता । सुनो एक कहानी.....अच्छा तुम्ही कहो, कोई ऐसा मुहल्ला है, जिसकी गली पतली-पतली नहीं है ? दस फीट की गली है भी तो लोगों ने द्वार की सीढ़ी ऐसी बनाई है कि आधी सड़क पार ।''

''यह तो छोड़ दो, पगलवा की गली में तो सबने अपने द्वार से लेकर बीच सड़क तक ससरौआ बनाया हुआ था कि कार सर्र से घर तक घुस जाय ।''

''अब तुम्हीं सोचो, एक बनाएगा तो दूसरा कैसे चूक सकता है । उसकी गाड़ी हो कि ना हो; उसने भी दूसरी ओर ससरौआ बना लिया है...गली की सड़क तो जैसे घाटी के बीच नाली । अब सुनो पगलवा की बातें—वह कभी भी उस मुख्य गली से नहीं निकलता, सुरंग की तरह चिमनिया गली से निकल जाए, लेकिन गली की पक्की सड़क से नहीं । उसे यह दृश्य देखा नहीं जाता था—भले इससे किसीको कोई मतलब रहे न रहे ।''

''क्यों नहीं, पगलवा को ही तो बस आँखें थी, बाकी सब तो बस सूरदास ही, ही. .ही..ही..ही.. ।''

''तुमने भी क्या याद दिला दिया । वह तो आँख रहते अन्धा था । रास्ते में किसी की उटपटांग चाल-ढाल देख कर आँख मून्द ले, और यदि मान लो कि तभी ही

उटपटांग ढंग से चलता कोई ठेलावाला या फिर मोटरसाइकिल ने धक्का मार दिया, तब ?''

''मार कैसे देता, वह तो खुद ही नाली से सटा-सटा बस हाथ भर ही अलग हटकर चलता था—साइकिल-ठेले के डर से । एक दिन तो बिना धक्का खाए ही नाली में फचूच से ससर गया, ही, ही, ही, ही, ही ।''

''अरे रे रे रे, तुमने जिस दिन की यह बात सुनाई, ठीक उसी दिन की एक और बात सुनो । मारवाड़ी पाठशाला के कोने वाला नल.....जानते ही हो, वह तो दस साल से बिना टोटी के ही वैसे ही बहता रहता है ।''

''वही नल क्या, शहर के सारे सरकारी नल का वही हाल है....''

''वही तो सुना रहा हूँ.....यह तो तुम भी जानते हो कि कोने पर ही विजयेन्द्र जी अपना कॉपरेटिव ऑफिस खोल कर कितना परेशान थे उस पागल से । शाम में उसे उधर से गुजरना ही था, और पानी को उसी तरह बहते देख सीधे ऑफिस घुस जाए और विजयेन्द्र जी को लगे उपदेश झाड़ने, ''ऐसे ही चलेगी देश सेवा, और समाज सेवा विजयेन्द्र भाई ? एक नल की व्यवस्था कर नहीं सकते, उसपर बड़ी-बड़ी मोर्चाओं के संयोजक बन गए ।'' उससे विजयेन्द्र इतने तंग थे कि उसे देखते ही स्टोररूम में घुस जाते और निकलते तो जाने की खबर पाकर ही ।''

''हा, हा, हा, हा, हा ।''

''और आगे तो सुनो ! दिन की बात है । नल का पानी नाली में वेग से बह रहा था, कोई भरने वाला नहीं....वह सीधे सीढ़ी को लाँघता ऑफिस की ओर बढ़ा और विजयेन्द्र जी तो भनक मिलते ही स्टोर रूम में ।....यह बातें जब कोने वाला पनवाड़ी सुनाता है, तब बहुत मजा आता है । पगलवा गुरगुराते हुए नीचे उतरा, और पहले तो नल के मुँह पर हथेली रखे कुछ देर खड़ा रहा....हाथ हटाया तो उसी तरह पानी हो...हो..तब जानते हो उसने क्या किया । जेब से अपना रुमाल निकाला और नल के मुँह में पेंच की तरह घुमा-घुमा कर घुसा दिया । लेकिन पानी का वह वेग, भला रुमाल को क्या समझता । पहले तो छुर-छुर कर इधर-उधर से पानी निकला, फिर ऐसे वेग से आया कि पगलवा का रुमाल नाली में । ही..ही...ही..ही ।''

''हा...हा...हा...हा, एकदम घोर पागल था । जानते हो, एक दिन मैंने क्या देखा ? देखता हूँ कि खलीफाबाग चौक की एक दुकान के बाहर खड़ा है । वह चित्रशाला वाला पिण्डा नहीं है, उसी पिण्डा पर, और टुक-टुक चौक पर खड़े पुलिस की छतरी को देख रहा है । पीठ पर हाथ रख कर पूछा तो कहा, ''अपना आदर्श चौंक देख रहा हूँ—स्मार्ट सिटी का स्मार्ट चौक । देख नहीं रहे—किस तरह पाँच-पाँच गायें सड़क की बीचो-बीच बैठी जुगाली कर रही हैं । खड़ा साँढ़ पुलिस के डंडे की तरह

नेंगड़ी भांज रहा है । बाढ़ में खर-पतार, गाछ-वृक्ष और कार, फटफटिया, साइकिल ठेला सब बह रहे हैं—ऐसा आदर्श चौक मिलेगा कहीं दुनियाँ में ? यह चौराहा है कि गौशाला—मैं आज तक नहीं समझ पाया ।'' और यह कह वह बिल्कुल खामोश हो गया भाई, जैसे गोबध लग गया हो उसे ।''

''और देखो, उन्हीं गाय-साँढ़ के बेलगाम दौड़ ने पगलवा की आखिर जान भी चली गई । जानते ही हो, गरमाई गाय के पीछे जब साँढ़-बैल दौड़ते हैं, तब तो रास्ते में किसी को क्या देखना भी चाहते हैं....उसी धर्मशाला के सामने.....उमताया साँढ़ दौड़ा तो एक बूढ़ा भागने के फेर में इधर-उधर करने लगा । ठेला, साइकिल, कार—भागे तो किधर भागे....ढूँसने के लिए साँढ़ बढ़ा ही था कि पगलवा ने देखा और बूढ़े को एक ओर धकेल दिया । धकेल कर भाग जाना था ना, सो नहीं, देखने लगा कि बूढ़े को चोट तो नहीं लगी, कि तभी साँढ़ ने सिंग से फाड़ ही तो दिया पगलवा को.. दोनों सिंगों पर पहले तो उसे उठाया और नीचे वैसे ही पटक दिया, जैसे कोई मजदूर भारी-भरकम सिमेन्ट की बोरी को जमीन पर पटक देता है और फिर पेट में सिंग को घुसा कर हिलकोर दिया । मिनट भी ना लगा होगा—फूटे बेलून की तरह लेट गया था माँटी में वह....खून तो दर-दर ।''

''च्, च्, च् जो कहो, पगलवा रहता था सबके लिए चिन्तित । चलो दो मिनट उसकी आत्मा की शांति के लिए खड़े हो जाएँ—वहीं चौधरी जी के लकड़ी-गोला में । कोई और तो आने वाला है नहीं—हमलोग दो हुए, गोला के विजय बाबू—तीन हुए और मुनी लाल—चार । बस खड़े हो जाना है दो मिनट । और क्या । चलो उठो ।''

''ठीक कहा, लेकिन पहले एक-एक सिगरेट तो सुलगा लो ।''

❐

सुख

''बस आज भर ही तो । कल तड़के सुबह होते-न-होते मैं बोरिया-बिस्तर समेट लूंगा। इस बार तीन दिन नहीं आना है । लदनी घोड़े-सा खटने से आराम मिल जाता है तो देह-हाथ टनमनाया लगता है । और क्यों ना—जीरबा की माँ के हाथों का बनाया खाना खाकर कौन-ना टनमना जाए । जैसे तन्त से खाना बनाती है, वैसे तन्त से ही खाना खिलाती भी है । जब तक खाने का एक भी कौर पत्ते में पड़ा हो, हटती नहीं है । मेरे एक-एक कौर पर उसका चेहरा खिलता रहता है, जैसे, कितने दिनों की बीमारी से उठा रोगी पत्थ देखकर । जिस समय आखरी कौर मुँह में रख ग्लास उठाता हूँ तो अघा-अघा जाती है जिरबा की माँ । यही स्नेह तो है उसका कि इस ठूँठ जगह में रहने का एक जरा भी मन नहीं होता....अब भागूँ कि तब भागूँ ...यदि गाँव में ही जीने लायक खर्च निकल आता तो यह परदेस क्यों जोगता ।'' रिक्शा पर बैठा अजमेरी यह सब याद कर गया ।

अजमेरी आज चार महीने से भागलपुर में रिक्शा चलाता है । तीस-पैंतीस से ज्यादा का होगा । कद-काठी मजबूत । मौका पड़ा तो दो-तीन सवारी की जगह पर चार-चार को खींच लिया । एक तो देह से अलग, दूसरा उसकी रिक्शा ऐसी की किसी का भी मन ललचा जाए उस पर बैठने को । कमाई के पैसे जोड़-जोड़ कर उसने यह रिक्शा खरीदी है । यहाँ नहीं, दुमका में । और वहीं से चलाते-चलाते भागलपुर ले आया । चार-चार सवारी बिना कसमकस के बैठ सकती है । दो आगे और दो पीछे । सीट के पीछे एक लकड़ी की पट्टी रख कर सीट बनाई गई है ।

वैसे तो छोटी-मोटी सवारी उसके रिक्शे की तड़क-भड़क देखकर ही संकोच में पड़ जाती है—पता नहीं, कितना किराया मांग बैठे, मोल-भाव करना उचित ना समझे, कुछ बोल न दे ।

वैसे भी अजमेरी सवारी देखकर ही रिक्शा पर बिठाता । दिन भर में चार-पाँच लम्बी दूरी वाली सवारी मिल गई तो रिक्शा खटाल में जाकर लगा दिया।

खटाल में रिक्शा लगाने के ही उसे दस रुपये रोज देने पड़ते हैं । वह खुद तो कहीं भी सो सकता है, लेकिन रिक्शा कैसे कहीं भी छोड़ दे—नींद खुलने से पहले ही कोई रिक्शा खोल ले जाय ! रिक्शा खटाल में और कमाई के पैसे हमेशा ही नीचे गंजी वाली जेब में, जिसे वह कभी नहीं खोलता है । सप्ताह भर की जमा-पूंजी उसी में।

यह कोई नहीं जानता कि शाम को रिक्शा लगाने के बाद अजमेरी रहता कहाँ है । ठीक सात बजे वह खलीफाबाग के चित्रशाला के समीप आकर खड़ा हो जाता है । स्टूडियो के मालिक रंजन जी, उसकी आखरी सवारी होते हैं । और ठीक आठ बजे के बाद जब वह खलीफाबाग लौटता है, बिना रिक्शा के होता है । खाली हाथ डुलाता ।

आकर चित्रशाला के संगमरमर वाली बाहरी पिण्डी पर बैठ जाता है । बस बैठने भर की देर है कि त्रिफला सबसे पहले उसके आगे ही पत्तल लगाती है, भले ही कोई रिक्शा वाला उससे पहले क्यूं न आया हो । इस चौराहे पर बीसो रिक्शे वाले खड़े होते हैं, और बीसो रिक्शा वालों को त्रिफला ही खाना खिलाती है । आते गए और खाते गए, लेकिन अजमेरी बिल्कुल अपने समय पर आता है—ठीक आठ बजे।

आज हो सकता है, वह त्रिफला के हाथ का खाना ना भी खा सके, जीरबा की माँ के हाथों का बना खाना ही खाए । बस दो-चार मोटी सवारी तो मिल जाए। सौ, सवा सौ हो जाए तो क्या कहना—उसने मन-ही मन सोचा—इससे कम आमदनी हुई तो वह आज घर नहीं लौटेगा । आज की रात यहीं । एक रात त्रिफला के हाथ का खाना और, फिर तो तीन दिन नहीं ही ना । वैसे भी त्रिफला क्या जीरबा माँ से कम मन से खिलाती है खाना ।

''क्या जी, मायागंज चलोगे ? अस्पताल जाना है ।''

अजमेरी का ध्यान टूटा । सामने एक औरत एक बूढ़े का हाथ पकड़े खड़ी थी । कपड़े देख कर लगता था कि किसी पढ़े-लिखे घराने से है । अभी उसके मन में यह सवाल उठता ही कि—पता नहीं....कि तभी औरत बोल उठी, ''बेटा, किराया की चिन्ता मत करो, जो तुम्हारा किराया होता है, उससे दुगूना ही दूँगी, कम नहीं, बस आहिस्ता-आहिस्ता हमें मायागंज पहुँचा दो ।''

अजमेरी तुरंत सीट से उतर गया—किराया को सुन कर नहीं, उस औरत की भद्र बोली सुनकर, और जब दोनों सवारी लेकर वह चला तो उसके पैर पैडिल पर वैसे ही धीरे-धीरे चलने लगे, जैसे उसके पैर ना हों, एक चाल में चलने वाले बैलगाड़ी के चक्के हों—सड़क की बायीं ओर धीरे-धीरे चलते ।

वैसे भी अजमेरी जब भी गड्ढे वाली सड़क पर रिक्शा चलाता तो धीरे-धीरे ही—अपनी रिक्शा है, कोई किराये की नहीं । फिर भागलपुर की सड़क तो जैसे

एक ही चेहरे पर गोटी के गड्ढे और ऐला का मांस भी—दोनो । सम्हल कर ना चलाया जाए तो दुर्गति हो जाए रिक्शे की । और अभी तो ऐसी सवारी बैठी थी कि जरा-सा भी झटका लगे तो सवारी नीचे । सो अजमेरी आगे देखे, और फिर घूम-घूम कर पीछे भी देख ले ।

''मालकिन, बूढ़े मालिक को ठीक से पकड़े रखिये, यह तो ऐसी सड़क है कि यदि रिक्शा खड़ी रहे, तब भी सवारी उछल कर सड़क पर गिर जाए ।'' सराय होकर जब भी अजमेरी रिक्शा निकालता है, तो सवारी से यह कहना नहीं भूलता। उस समय यह बात कहने में उसका चेहरा अजीब-सा हो जाता है ।

कितनी बार तो कसम खाई है कि भले ही दस मिनट देर हो जाए, लेकिन इधर से नहीं जाना है । लेकिन करे भी क्या, जब पैसेंजर यूनिवर्सिटी की ओर से मिल जाए । और सुबह के वक्त तो अधिकतर सवारी इधर की ही मिलती है । एक भी प्रोफेसर-टीचर मिल जाएं तो भीखनपुर के मारवाड़ी कॉलेज तक का पन्द्रह से बीस रुपये । आज भी वैसी ही सवारी मिली तो आना ही पड़ा ।

प्रोफेसर कॉलोनी से मायागंज जाने में उसे पूरे घंटे भर लग गये । रुका, तो हैंडिल में लगे रबड़ को ब्रेक में फसाते हुए उने बूढ़े को उतारने में मदद की । सोचा तो यही था, कि सवारी उतरेगी और उसको छोड़ देगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। औरत ने उसे रुके रहने की बात कह वृद्ध के साथ अस्पताल के ग्राउन्ड में घुस गई।

इसका मतलब है, अब आधा घंटा देर—अजमेरी ने सोचा और फिर रिक्शा एक ओर लगा कर उसपर जम गया । मन-ही-मन हिसाब लगाने लगा, यूनिवर्सिटी से मायागंज—कितना भी कम हो तो भी पच्चीस रुपये, रोकने का मतलब हुआ, फिर लौटती—पच्चीस । पचास रुपये तो ऐसे ही हो गए.....कहा है दुगना दूंगी । दुगना देगी क्या ऐसे ही, घंटा-आधा घंटा रुके तो पच्चीस रुपये वैसे ही हो गए—जो दे भी दे तो पच्चीस रुपये ज्यादा ही ना.....इतना बचा-बचा कर लाने में एतना देना ही चाहिए....जो सोच कर मैं गदगद हो रहा था, सो वैसी कोई बात नहीं है । मेहनताना भर मिल रहा है । हाँ, यह होगा कि एक ही सवारी ऐसी मिल गई कि अब दूसरी सवारी उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी । बस आराम से रिक्शा लगानी है और नवगछिया वाली गाड़ी पकड़कर सीधा कटिहार । कितना भी देर-सवेर हो, लेकिन आठ बजे रात तक तो पहुँच ही जाऊँगा.....अच्छा ही होगा....जिस समय जिरबा की माँ मुझे अचानक आया देखेगी, तो कैसी गुदगुदा जायेगी—यह बात सोचते ही अजमेरी खुद ही इस तरह गुदगुदा उठा कि पूछो मत। चेहरा पर एक अजीब-सी चमक फैल गई ।

क्या-क्या नहीं सोचता रहा वह—जब तक सवारी लौट नहीं आई ।

अनुमान से ज्यादा देर कर आयी थी—पौने घंटा बाद ।

—चलो कोई बात नहीं, इधर से तो ढलान-ही-ढलान है । बीच-बीच में एकाध पैडिल मारनी है और सीधे खलीफाबाग, फिर सराय चौंक से भैरवा तालाब तक तो कोई दिक्कत ही नहीं—वह मन-ही-मन बुदबुदाया और सवारी को सावधान करते हुए बोला, ''दोनों आदमी टप्पर की बत्ती को पकड़ लीजिए, ढलाव है ना, कितना भी धीरे-धीरे चलाऊँ तेज हो ही जाएगा ।''

रास्ते भर वह पूरी कोशिश करता रहा कि रिक्शा तेज न चले, नहीं तो ऐसे ढलाव पर उसकी रिक्शा को पंख लग जाते हैं—पंखवाली गाड़ी और अजमेरी उसपर सवार । उस समय उसे सवारी का कोई ख्याल नहीं रह जाता । लेकिन क्या मजाल, कि रिक्शा रास्ते से जरा भी बेरास्ता हो जाए ।

आधा घंटा भी ना लगा होगा कि रिक्शा फिर उसी जगह पर । और जिस समय उसके हाथों पर भाड़ा के सौ रुपये पड़े, वह खुशी से गनगना उठा । बड़े गौर से दोनों सवारी को देखा, पहले इतना ध्यान नहीं दिया था—औरत रेशमी साड़ी में और मर्द रेशमी कुर्ते में, शांतिपुरी धोती—एकदम चकचक, किसी बड़े घराने के लगते हैं । अपनी कार नहीं होगी, यह बात हो नहीं सकती, या तो गाड़ी में कोई खराबी आ गई होगी या ड्रायवर नहीं आया होगा, तभी रिक्शा करना पड़ा—एक क्षण में उसने बहुत कुछ अनुमान लगा लिया ।

सवारी एक सौ थमा कर ऐसे आगे बढ़ गई, जैसे उसने कुछ ज्यादा नहीं दिया हो, उसका वाजिब भाड़ा भर ही ।

अजमेरी ने सौ के नोट को गौर से देखा, उलटाया-पुलटाया, आँख के समीप लेजाकर कुछ मिलाया और फिर जतन से मोड़ कर गंजीवाली जेब में रख लिया, जिसे वह शरीर से कभी नहीं उतारता—बस चार-पाँच दिन के बाद ही, घर पहुँचने पर ही।

—अब क्या कमाना है । हो गया । जीरबा माँ के हाथों पर जब पाँच सौ रुपये रखूँगा, उस समय की उसकी खुशी कौन लिख सकता है। लेकिन पाँच सौ रुपये के लिए उसके पास और पच्चीस रुपये होते, तभी ना । पाँच सौ हटाने पर तो उसके पास पचास ही बचते हैं, इसमे खटाल मालिक को भी देना और भाड़ा भी। बस एक-दो पैसेंजर और उठा लूं तो बीस-पच्चीस रुपये हो जाना दायां-बायां की बात है । फिर ऐसी रिक्शा पर तो ऐसे भी आदमी चढ़ना चाहे—मन ही मन सोचकर वह मुस्कुराया और रिक्शा मोड़ लिया ।

खलीफाबाग की ओर ना जाकर नया बाजार की ओर मुड़ गया ।

चढ़ाव पर भाड़ा दो पैसे लगा कर ही मिलते है । अब जो गाड़ी निकाल ही ली है तो क्या आधा दिन और गोठा बेरा.....लेकिन नहीं, सवारी मिल भी जाती

है तो क्या, आज उठानेवाला नहीं हूँ, भले ही आज घर ना जाऊँ तो ना सही, लेकिन गाड़ी एक बजे तो लगा ही देनी है । लगानी है और बस बैठ जाना है सिनेमा हॉल में—उड़ी-उड़ी बैठै मरवड़िया दुकनियाँ.....इस्स, एकेक गाना जोरदार है, दो बार देखा, मन नहीं भरा, क्या पता लौट कर आऊँ और फिल्म ही गायब । भीड़ भी तो नहीं जुटती, लेकिन जो पूछो—नौटंकीवाली का नखरा और गाना एकदम झकझोर देने वाला है—सोचते ही अजीब स्थिति हो गई अजमेरी की—आँख में मेले का नाँच, कान में ढोलक की थाप और मुँह में रह-रह कर गीत की वही पंक्ति—उड़ी-उड़ी बैठै मरवड़िया दुकनियाँ ।

और सच ही एक बजे रिक्शा खटाल में लगा कर अजमेरी सिनेमा हॉल में बैठ गया । जब सिनेमा हॉल से निकला तो उसे सौ के नोट की याद आई । गंजीवाली जेब में हाथ डाला, कुछ इस तरह से, कि कोई यह न समझे—रुपये समेट रहा है, समझे तो यही कि पनखोका में खुजली हो रही है, वही खुजा रहा है । दिखाने के लिए ही उसने दो-तीन बार पनखोका खुजाया था—क्या ठिकाना, वह नौटंकी वाली को देखने में मशगूल हो और इधर पाकिटमार टेबने में... बाप रे बाप, यदि ले ही लिया होगा तो वह जिरबा माँ के हाथ में क्या देगा, जिसे मैं कैसे जमा करता हूँ, मैं ही जानता हूँ—सोचते ही उसका माथा ठनक गया । चुटकी ससार-ससार कर नमरी को फटाफट गिना—एक, दू, तीन, चार, पाँच । निश्चिन्त हुआ तो फिर उसने उसी तरह इधर-उधर देह-हाथ खुजलाया था ।

००

अहाते से बाहर निकला तो रात के साढ़े आठ बजे थे, और जब त्रिफला के पास पहुँचा तो नौ बजने को आए थे ।

''क्या, आज इतनी देर ? कोई दूसरी त्रिफला मिल गयी रास्ते में क्या ?''

त्रिफला की यह बात सुनकर अजमेरी न जाने किस रस से भीतर तक भींग गया । बोला कुछ नहीं, मुस्कुरा कर रह गया । त्रिफला भी जानती है कि शनिवार और इतवार को वह शहर में नहीं रहता, अपने गाँव चला जाता है—घर के लिए कुछ खरीदने चला गया होगा । कितना हाय-हाय करेगा, ऐसी हाय-हाय में परिवार का सुख ही नाश हो जाए—इसीलिए चाहे कितना भी ओला-पानी क्यों ना पड़े, अजमेरी को कोई आंधी-तूफान भी नहीं रोक सकता ।

''बहुत देर हो गई । सच पूछिये तो आपके लिए ही दुकान अभी तक नहीं बढ़ाई है । नहीं तो जिसे-जिसे खाना था, वह खाकर चले भी गए ।'' त्रिफला ने बड़ी स्नेह से धोए बर्त्तन को साफ कपड़े से पोछते कहा । पोछ कर उसके आगे

करते हुए उसमें भात रखा । समेटा । गोल कर गड्ढा बनाया कि दाल डाले तो फैले ना । दाल डाली और फिर थाली में दो सब्जी रखते हुए कहा, ''आलू का भरता-भाजी तो खाते ही हैं । आज आलूदम खाकर देखिये । आपकी पसन्द का बनाया है—खट्टे रस वाला—टमाटर देकर । आप ऐसी सब्जी तो जी-जान से चाहते हैं ।'' सब एक साँस में ही कह गई—आलूदम की कटोरी उसके आगे रखते हुए।

उसे मालूम है, आज के बाद अजमेरी अब दो दिन बाद ही दिखेगा । उसकी थाली में कुछ कम होता भी नहीं कि त्रिफला उसके मना करने के बावजूद वह चीज जबरदस्ती रख देती, ''जी जान से खटते हैं तो रुचि का जी भर खाइयेगा भी नहीं । गाड़ी खींचने का मतलब हुआ बैल की तरह मजबूत देह रखो, खाने-पीने में लाज कैसी । कहते हैं ना—एक घड़ी की बेशरमी, चौबीस घड़ी आराम ।''

त्रिफला की बात सुनते ही अजमेरी को जिरबा माँ की याद आ गई—ऐसे ही तो वह भी खाना खिलाती है, जोर-जबरदस्ती कर के । ऐसी ही बातें वह करती है—''देह-हाथ सलामत रहेंगे, तभी ना घर-गृहस्थी का भार उठाइयेगा । यदि सामर्थ्य ही नहीं रहेगा तो....''

उसे याद आया—जिरबा की माँ वैसे ही तो मेरे लिए देर तक आसरा देखती बैठी रह जाती है, और कोई खाना बनाए ना बनाए, तरीवाली कोई खटरुस सब्जी उसके लिए जरूर बनायेगी, जानती है, ऐसा होने से दो कौर ज्यादा खा ही लेता हूँ .....यह बात त्रिफला को कैसे मालूम हो गई.....औरत है, सौ दिन खाना खाता हूँ तो रुचि जान लेना कोई बड़ी बात नहीं .....

अजमेरी तो एकदम विभोर हो उठा । एक-एक कौर पर सोच रहा था—त्रिफला के बारे में । उसे इस बात की सुध ही नहीं रही कि वह घर पर नहीं—चौराहे वाले चित्रशाला के पिण्डे पर बैठा खा रहा है, और जिरबा की माँ नहीं, त्रिफला उसे खाना खिला रही है ।

त्रिफला को कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर आज अजमेरी कुछ जवाब क्यों नहीं दे रहा है । वह परेशान हो उठी, लेकिन पूछा कुछ भी नहीं ।

अजमेरी का खाना खत्म हो गया था । इतने दिन में यह पहली बार हुआ था कि उसने थाली में ही हाथ धोया । दोनों हाथों की अंगुलियों को क्रम से मुट्ठी में बांधते हुए दो-तीन बार ऐसे घुमाया कि भींगी हुई तलहथी सूख जाए । त्रिफला ने देखा, लेकिन बोला कुछ नहीं । बस, थाली एक ओर हटा कर हांडी-पतीला जल्दी-जल्दी समेटने लगी । समेट-उमेट कर जब जूठी थाली की ओर अपना हाथ बढ़ाया था कि अमजेरी ने उसके हाथ में अपनी कमाई थमा दी ।

त्रिफला ने देखा, उसके हाथों में दस रुपये की जगह पाँच नमरी थे ।

उसकी आँखें फटी रह गईं । अजमेरी की ओर देखा, हजार-हजार सवाल आँखों में लिए, लेकिन अजमेरी त्रिफला को देखते हुए भी त्रिफला को कहाँ देख रहा था । बेसुध हो रहा है । रुपये को रखते ना देखा तो अजमेरी ने कहा, ''रख लो, सब दिन क्या सामर्थ्य एक ही तरह रहता है ।'' कहते-कहते जबरदस्ती सारे नमरी त्रिफला की मुट्ठि में बांध दिए और जल्दी-जल्दी घंटाघर की ओर अन्धेरी रात में बढ़ गया। ❐

भय

वह आदमी अपने चार-पाँच लोगों के साथ चन्दा मांगने आया था । देखने से ही लगता था कि वह चन्दा लिए बिना किसी तरह से नहीं जाने वाला है । मुंशी चन्दा दे भी देता, लेकिन जिस तरह से उस आदमी ने चन्दे की रशीद पर पाँच-दस रुपये की जगह सीधे पचास रुपये लिख दिया था, उससे मुंशी का मिजाज ही चिढ़ गया था और उसने अपनी औकात से बाहर चन्देवाले से कह दिया था कि मैं चन्दा नहीं देने वाला, जो करना है कर लीजिए । सुनते ही उस चन्दा मांगने वाला का रंग चढ़ गया था और कहा था, ''क्या कहा, नहीं देंगे, मुहल्ले में रहिएगा और चन्दा नहीं दीजिएगा । तो ठीक है । रे सुखना चल । अब अपहरण होगा तो अपने आकर पचास हजार रुपये जमा करेगा अपनी फिरौती करवाने ।'' और यह कह कर वह आदमी अपने लोगों के साथ बड़बड़ाते हुए निकल गया था ।

उन लोगों के जाने भर की देर थी कि मुंशी का दिमाग ही जैसे चक्कर खाने लगा था । उसे कुछ भी समझ में नहीं आया और सीधे घर से निकल कर पास के एक थाने में जा पहुँचा । संयोग था कि जमादार अपनी कुर्सी पर आराम करता मिल गया था । मुंशी को देखा, तो बिना कुछ शरीर में गति लाए बोला—''क्या है मुंशी, इधर कैसे ? तुम तो कहा करते थे कि भले आदमी को थाने, फांड़ी की कभी जरूरत हो ही नहीं सकती ।''

''भूल में थे, जमादार साहब । आजकल तो भगवान को भी थाना फांड़ी के बिना राहत न मिले ।'' मुंशी की बातों में रस की गंध का आभास मिलते ही जमादार कुर्सी पर सीधा हो गया था और कहा था ''बोलो क्या बात है ?'' एक भेद भरी आँखों से देखते हुए जमादार ने मुंशी को देखा था ।

''ऐसा है कि अभी कुछ लोग मेरे घर पर आए थे चन्दा मांगने । मेरी इच्छा के विरूद्ध रसीद के ऊपर पचास रुपये लिख दिया । जब मैंने नहीं देने की बात की तो कहा, 'अब अपहरण होने के बाद ही यह पचास हजार रुपये पहुँचाएगा ।'

मैं जानता हूँ वे लोग खतरनाक किस्म के आदमी हैं, कभी भी कुछ कर सकते हैं ।''

जमादार ने मुंशी की बातों को पल में ही तौल लिया और फिर उसी तरह कुर्सी पर जमते हुए आराम की मुद्रा में कहा, तो फिर जाओ, ''जब अपहरण होगा तो फिर कहने के लिए आना, या रिपोर्ट कराना । अभी किसलिए आ गए हो माथा चाटने ।''

''लेकिन अपहरण के बाद मैं किस तरह से यहाँ आ सकता हूँ ?''

''सब हो जाता है । कबाड़ी की दुकान समझ रखा है, कहीं कुछ बात भी नहीं हुई और सीधे यहाँ पहुँच गए । भागते हो कि नहीं यहाँ से ।''

मुंशी को जमादार की बातें समझने में देर नहीं लगी, और वह उस शहर को ही छोड़ कर भाग गया ।

❐

रहस्य

चुनाव जीतते ही नेताजी धर्माचार्य के पास गए और सभी तरह की समृद्धि और सफलता के लिए आशीर्वाद मांगा ।

धर्माचार्य ने लाल कपड़े में लपेटा एक धर्मग्रन्थ उनके हाथों पर रखते हुए कहा, ''इसका नियमित पाठ आपके यश और समृद्धि का दायक बनेगा ।''

नेता जी ने अपने दोनों हाथों से उसे लिया और उस पर सर रखते हुए, बगल में सावधान मुद्रा में खड़े संतरी को दे दिया ।

फिर मंत्री जी ने सफेद कपड़े में लिपटा एक ग्रन्थ धर्माचार्य की ओर बढ़ाया। उन्होंने भी वह किताब दोनों हाथों से लिया और उसे सर से लगाते सामने के सिंहासन पर रख दिया ।

❐

आधी रात की सुबह

सुरेखा ने अपने बगल में सो रहे पति को देखा, जो अब बिल्कुल गहरी नींद में था—अपने चेहरे पर सुरेखा के घने लंबे बालों को लटकाए । उसने आहिस्ता से उसके चेहरे पर पड़े अपने बालों को हटाया तो मंटू एक क्षण के लिए सिहरा, पर पुनः यथावत हो गया । सुरेखा ने एक बार उसे खिली हुई आँखों से देखा । मन में आया कि वह उसे झकझोर कर जगा दे और उसके कंधे पर सिर रखकर खूब फूट-फूट कर रोए, मगर वह रोए ही क्यों ? उसने अपने मन में सोचा । आखिर मंटू मुझसे छूट गया था तो इसमें मेरा क्या दोष ? यह भी तो नहीं था कि मंटू मुझको प्यारा नहीं रहा । यह तो माँ और पिता जी की समझ थी कि उन्होंने शादी-ब्याह के मामले में लड़की की इच्छा-अनिच्छा को जानना जरूरी नहीं समझा । पिता जी ने तो खैर एक बार माँ से कहा भी था—'एजी, सुरेखा पढ़ी-लिखी है, बी. ए. पास। शहरी समाज के बीच रही है । शादी के मामले में हमें सुरेखा की भी राय जान लेनी चाहिए । क्या तुम देखती नहीं कि रांची से लौटने के बाद जिस दिन से अपनी शादी की बात सुनी है, खुश नहीं दिखती । सुरेखा की बातों को मानना, न मानना तो हम लोगों के ऊपर है, लेकिन.....'

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं । सुरेखा पढ़ी-लिखी है तो अपने जमाने की मैं भी सातवीं पास हूँ, समझा आपने । लड़कियाँ लाख लिख-पढ़ ले, वह अपने हित-अनहित की बात एकदम नहीं समझ पाती है । मेरी माँ समझाती थी कि बेटी, माँ-बाप जो कर दे, जिसके साथ शादी कर दे, उसके साथ खुशी-खुशी जीवन गुजारना चाहिए । मैं कहती हूँ तुम्हारी तो मति ही मारी गई है । मेरे पिता जी खाते-पीते कहा करते थे—'जिमि स्वतंत्र होई बिगरहीं नारी ।' और एक तुम हो कि सुरेखा से ही पूछना चाहते हो कि उसकी शादी किसके साथ हो, किसके साथ नहीं । और पति तो पति है, स्त्री उसकी सेवा करते-करते मोक्ष पाने के लिए है, चाहे वह पति लंगड़ा, लूला, बहरा और कोढ़ी ही क्यों न हो ।''

'सो बात तो सही है, लेकिन अब तुम्हारा युग तो रहा नहीं ।'

'अरे तो नये युग में ही कौन-सा निहाल हो रहा है ? यही कि सौ, दो सौ रुपये कमाने लगी, पति से मुँह लगाने लगी । हम लोग के खानदान में तो शादी के बाद कोई स्त्री कभी ससुराल की देहरी से बाहर नहीं निकली । और आजकल की औरतें.....छी, छी । किस-किस मर्द के बारे में खिल्ली उड़ाती फिरेगी । माता अनुसुइया ने आखिर सीता को क्या समझाया था । अब तो धर्म का जैसे नाश हुआ जा रहा है । देखो जी, मैं साफ-साफ कहे देती हूँ, पुष्पेन्द्र जैसा भी हो, उसके घरवाले जैसे भी हों, सुरेखा को इससे मतलब नहीं होना चाहिए और न ही तुमको उससे पूछने की जरूरत है । सुरेखा की शादी पुष्पेन्द्र से ही होगी, समझे न और अगर तुमने इधर-उधर की, तो तुम ही इस घर में अकेले रहोगे, मैं नहीं ।'

'अब इस पर मैं क्या कहूँ, लेकिन जब भी मैं इस मामले पर सोचता हूँ, तब यही लगता है कि नारियों के उत्थान में सबसे बड़ी बाधा नारियाँ ही है ।'

'तुम्हारी तो मति ही मारी गई है । तुम मास्टर क्या बन गए, अपने को दूसरा मनु ही समझने लगे । अरे गाँव भर को देखो, किसकी लड़की बीस-पच्चीस तक घर में रही है । पन्द्रह की हुई न हुई, माँ-बाप के सर भार हुई । जवान बेटी को घर में रखना पाप है, समझे न । उस पर तुम कह रहे हो कि सुरेखा से पूछ लो। मानो कि उसने इन्कार कर दिया । इन्कार कर भी दे सकती है, पढ़ने-लिखने से तो लड़कियों का दिमाग ही बहक जाता है । हमारे माँ-बाप मूर्ख थोड़े ही थे जो उन्होंने लड़कियों को कभी स्कूल-कालेज नहीं भेजे । और अगर सुरेखा ने इन्कार कर ही दिया, तो क्या बेटी को घर में रखोगे ? धर्म का सत्यानाश करोगे ?'

'कल्याणी, तुम्हारा यह धर्म मेरी समझ में कभी नहीं आयेगा । और तुम्हारा बेटा जो बत्तीस वर्ष से कुँआरा पड़ा हुआ है ?'

'पुरुषों को यह दोष नहीं लगता । समरथ को नहीं दोष गोसांई ।'

.....और माँ की जिद् के सामने पिता जी को झुकना पड़ा था । झुकते तो कभी नहीं । चाचा, चाची, फुआ और पड़ोस वालों का इतना जोर न पड़ता तो क्या पिता जी पुष्पेन्द्र से मेरी शादी करते ? और सबने मिलकर मरियल पुष्पेन्द्र को मेरा पति बना दिया ।

सुरेखा की आँखों के सामने उसके विवाह के दृश्य उपन्यास की सरल कथानक की तरह एक-एक करके आने-जाने लगे ।

.....विवाह का अन्तिम लग्न जा रहा था । गर्मी से धरती की पीठ पर भी फोड़े निकल आए थे । ऐसे में पिता जी ने जैसे-तैसे विवाह की सारी तैयारियाँ कर ली थी, तैयारियाँ क्या थीं, किसी तरह रस्म पूरी करने के लिए सभी सामान जुटा

लिए गये थे । और इस विवाह में मुझे सबसे ज्यादा खुश माँ ही दिखी थी । डोली पर मेरे चढ़ते समय माँ का कलेजा मेरे वियोग में फटने की जगह उसकी आँखें खुशी में चमकने लगी थीं कि अब जवान बेटी घर में रखने का पाप उसे नहीं लगेगा । और मैं रोती-धोती हमेशा के लिए पुष्पेन्द्र की हो गई थी, लेकिन पुष्पेन्द्र ही मेरा न हो सका ।

.....तो क्या माँ को मालूम था कि पुष्पेन्द्र को दमे की बीमारी थी । आखिर माँ ने यह क्यों कहा कि पति लंगड़ा, लूला, कोढ़ी हो तो नारी को चाहिए कि.... ओह, माँ तुम कितनी निष्ठुर थी । सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाने और झूठे धर्म की रक्षा में तुमने मेरा ही होम कर दिया ।

.....मेरा तो कई बार मन हुआ था कि कुएँ में कूद डूब मरूँ, गले में रस्सी लगा लूँ, लेकिन यह सोच कर कि कहीं पुष्पेन्द्र को मेरी ही सेवा से ठीक होना लिखा हो, मैंने वह सब कुछ भी नहीं किया । सिर्फ मैं उसकी सेवकाई करने लगी थी । पत्नीत्व को पूर्णता देने के लिए, हिन्दू नारी का आदर्श रखने के लिए । उफ! कितना असाध्य और नारकीय होता है, धर्म को दृष्टि में रखकर आदर्श पत्नी होना । सोचते-सोचते सुरेखा का जी एकदम कसैला हो गया । उसने घूम कर एक बार फिर मन्टू को देखा, जो अब भी उसी करवट सो रहा था । धीरे-धीरे साँसों के आने-जाने के कारण उसका सीना ऊपर-नीचे हो रहा था । मन्टू के चौड़े और उभरे हुए सीने को देख कर सुरेखा को गौरव हो आया । पुष्पेन्द्र से मुझे यह सुख न मिलना था, न मिला । अचानक ही उसे पुष्पेन्द्र की वह पिलपिली बाँहें, बैठी हुई छाती याद आ गई । बीमारी ने कितना रुग्ण बना दिया था उसे । धीरे-धीरे बीमारी थमने की जगह बढ़ती ही गई थी ।

पुष्पेन्द्र का खाँसना धीरे-धीरे तेज होता गया था । इस हद तक कि उसका बिछावन घर के बाहर बरामदे वाले कमरे में कर दिया गया था । पुष्पेन्द्र के लगातार खाँसने से रात को दूसरों को सोने में परेशानी होने लगी थी । मैं किसी तरह भी नहीं समझ पाई थी कि आखिर इसमें पुष्पेन्द्र का क्या दोष था ? वह निरीह भाव से मुझे देखता रहता । मुझे भी उसकी स्थिति पर इतनी करुणा आने लगी थी कि मैं दिन-रात दुआ और दवा करती रही । लेकिन लहरों पर कौन घर बना पाया है? और आखिर एक दिन पुष्पेन्द्र....।

सुरेखा ने एक लम्बी गहरी साँस खींची, और उसकी आँखें ऊपर की ओर उठ गई । कमरे की छाती से लटक रहा पंखा तेज गति से घूम रहा था । सुरेखा अपनी पुरानी यादों को भुलाने के ख्याल से पंखे की घूमती हुई पत्तियों को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगी थी । उसे लगा, जैसे उन पत्तियों से हवा के झोंकों की

जगह शोरगुल करते अजीब-अजीब चेहरे इधर-उधर उड़ने, बिखरने लगे हैं । उसने उन चेहरों को पहचानने की ठीक-ठीक कोशिश की और यह देखकर उसकी आँखे फटी-की-फटी रह गई कि वे उड़ते हुए चेहरे उसके ससुराल वालों के ही थे, जिन्हें वह दो वर्ष पूर्व छोड़ आई थी । छोड़ क्या आई थी....

सुरेखा ने दो सालों की मोटी परत को चीरती हुए अपने अतीत को देखा, न चाहते हुए भी ।

.....दोपहर का समय था, पुष्पेन्द्र की खराब तबियत अपनी सीमा पर थी। उसने सास से कहा था कि शहर के किसी अच्छे डाक्टर के पास उसे ले चले । लेकिन माँ ने सिर्फ झुझलाती हुई इतना ही कहा था कि, 'पति का भाग्य, अभाग्य उसकी स्त्री के भाग्य, दुर्भाग्य से बनता है । तुम्हारी किस्मत ही ऐसी है, मेरे बेटे का.....' और इतना कहती हुई, घृणा से फटकती वह वैद्य को बुलाने चली गई थी, वही वैद्य जो दस सालों से पुष्पेन्द्र का इलाज करता आ रहा था और किसी तरह ठीक नहीं कर पाया था, वह उस आखरी समय में क्या कर लेता । लेकिन माँ का इस अनाड़ी वैद्य पर ही इतना विश्वास था कि किसी की कुछ सुनने को तैयार ही नहीं थी । यह भी दुर्भाग्य ही था कि वैद्य गाँव से बाहर गया हुआ था । माँ ने किसी दूसरे डाक्टर या वैद्य से दिखलाना ठीक नहीं समझा । जब एक वैद्य देख ही रहा हो तो दूसरे की क्या जरूरत । नाड़ी-बीमारी न समझ सका तो और भी खराब । माँ ने फिर दुहराया था कि पति का भाग्य उसकी स्त्री के भाग्य से बनता-बिगड़ता है, डाक्टर-वैद्य से नहीं । और वह पड़ोस से दो-तीन भजनियों को तुरन्त बुला लाई थी । भजन गाने वालों ने जोर-जोर से 'हरे रामा, हरे कृष्णा' करना शुरू कर दिया था । शोर से तो कान फटे जा रहे थे । पुष्पेन्द्र पर इन शोरों का कुछ भी असर नहीं पड़ रहा था, लेकिन माँ और पिता जी खुश दिख रहे थे कि प्रभु के नाम का भजन चल रहा है । अब पुष्पेन्द्र अवश्य ही ठीक हो जाएगा । लेकिन पुष्पेन्द्र ने दो घन्टे के बाद ही खाट पर एक बार करवट बदलने के बाद अपनी आँखें जो बन्द की, तो फिर नहीं खोली ।

घर में कुहराम मच गया था । दुधवी, सतलहान, दशकरम, श्राद्ध और सापिण्डी के साथ-साथ घर भर में रोना-धोना भी समय-कुसमय चलता ही रहा । मेरी देह का तो खून ही सूख गया था । माँ ने ही आकर मेरी कलाइयों की चूड़ियाँ फोड़ी थीं, शायद गुस्से और घृणा में ही कि मेरी कलाइयों में टूटी चूड़ियों के कोर धँस जाने के कारण रिस-रिस कर खून बहने लगा था । माँ ने ही माँग के सिन्दूर को भी जोर-जोर से मिटाना शुरू किया था । यह तो उस समय नहीं, बाद में जाना कि माँ ने मेरे माँग के सिन्दूर को हटाते समय मुझे कुछ क्षण क्यों देखती रह गई थी.....

सोचते-सोचते सुरेखा को लगा, जैसे उसका मस्तिष्क पंखे से अधिक तेज गति से घूमने लगा है । जैसे उसका एक-एक रेशा मस्तिष्क से छिटक कर बाहर हो जाएगा। उसने अपना माथा दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया था और फिर शांत होते ही अपने हाथों से अपने कपाल को सभी ओर से छू-छा कर देखा था । मिनटों छू कर देखती रही थी, कहीं तो ऊपर-नीचे नहीं था । जैसे कि औसतन औरतों का होता है, उसका भी तो वैसा ही कपाल है । सुरेखा ने अपनी भौंहों को, आँखों को बारी-बारी अपनी अंगुलियों से छू-छू कर देखा, कहीं कोई विकृति नहीं थी । फिर भी माँ ने मेरे वैसे-तैसे होने का मुझ पर आरोप क्यों लगाया ? हाँ, बचपन में खेलती हुई वह जरूर आँगन में ऊँची देहरी से गिर पड़ी थी । उसका कपाल फट गया था । बाँयी आँख के नजदीक ऑपरेशन करना पड़ा था और इस बात का स्मरण होते ही सुरेखा को लगा, जैसे अचानक ही उसकी बाँयी आँख के आस-पास एक तेज दर्द उठने लगा है । उसने अपने दुखते कपाल और आँख को धीरे-धीरे सहलाना शुरू किया कि उसे लगा जैसे उसका कपाल बीच से काफी ऊपर उठ गया और उसकी बाँयी आँख के साथ-साथ उसकी भौंहें भी विचित्र ढंग से टेढ़ी हो गई है । उसे लगा, जैसे उसका कपाल पूरा-का-पूरा फूल गया हो । वह घबराहट से बिछावन से उठी और दर्पण के सामने खड़ी हो गई थी । और यह देखकर उसने राहत की साँस ली कि उसने कपाल की जगह, सर पर बिखरे हुए जूड़े के हिस्से को पकड़ रखा था । सुरेखा अपने धड़कते दिल पर काबू पाती हुई लटकते हुए जूड़े को बड़े प्यार से पीछे की ओर कर दिया और फिर गौर से शीशे में अपने चेहरे को निहारा था । बचपन में लगी चोट का वही कुछ उभरा हुआ हिस्सा.....तो क्या इसी को देख कर मेरी सास ने मुझे ऊँचे कपाल और टेढ़ी भौंह वाली मान लिया था और मुझे कुलक्षणी के साथ अनर्थ करने वाली भी । पुष्पेन्द्र को तो मरना ही था । मुझसे शादी न होकर चाहे किसी और से ही क्यों न हो जाती । कुछ साल बच गया तो मेरी ही सेवा के कारण । इतने वर्ष की पुरानी बीमारी, देवता भी चाहते तो पुष्पेन्द्र बच जाता क्या ? और अगर नहीं, तो मुझ पर क्यों ऊँचे कपाल और टेढ़ी भौंह वाली कह कर मुझे ही दोषी सिद्ध किया । और किसी औरत के ऐसा होने से उसका पति मर जाता है क्या ?..... उफ, क्या-क्या नहीं किया मेरे साथ ससुराल वालों ने, पुष्पेन्द्र के मरने के बाद । .....एक दिन चलते समय मुझे रुकने के लिए कहा गया और छोटी ननद ने एक तार को मेरे दाएँ पैर के नीचे से पार कराया, जो पार भी हो गया । फिर क्या.... घर के सभी लोग किसी अज्ञात आशंका से भयभीत हो गए थे । लोग मुझसे आँखें तक चुराने लगे थे । सास ने तो देवर को घर से ही बाहर कर दिया था, बड़े भाई के पास पढ़ने के बहाने । लेकिन और सब घर छोड़ कर कहाँ जाते । बस इसी सोच

में रहने लगे कि किसी तरह मुझे ही घर से बाहर निकाल दे । समूचे गाँव में मेरे लिए यह कहावत प्रचलित हो गई थी—'ऊँच्च कपाड़ी, भौआं टेढ़ी, खड़मगोड़ी' । कुलक्षणी को घर वाले देखते ही आँखें चुरा लेते । गाँव का गाँव तक मुझे 'ऊँच्च कपाड़ी, भौंहा टेढ़ी, खड़मगोड़ी' के नाम से जानने लगा था । मैं चुपचाप अपने कमरे में भयभीत चुहिया की तरह दुबकी रहती । और रह-रह कर सास, ननद की कड़ी जहर भरी बातें दूसरे कमरे या आँगन में झनझनाती रहती ।

....अरे इतनी ही पतिव्रता होती तो पति के मरने के बाद ऐसी ही फलती-फूलती रहती क्या ? सौभाग्य वाली होती तो आते ही पति को खा नहीं बैठती। आखिर क्यों लोग शादी से पूर्व लड़की के अंग-प्रत्यंग की जाँच-परख किया करते हैं । यहाँ तो इस कुलक्षणी में तीनों अपशकुन वाली ही बातें हैं—ऊँच्च कपाड़ी, भौंहा टेढ़ी, खड़मगोड़ी । 'पति खा गई, अब घर भर को खाएगी, तब मरेगी.....'

जैसे घने अँधेरे कमरे में तेज रोशनी चमक उठी हो, हवा में लहराते हुए किसी व्यक्ति के पैरों के नीचे कोई ठोस आधार आ जाए, ठीक वैसे ही अगर मेरी जिन्दगी में मन्टू नहीं आ जाता तो....? कि तभी उसके दिमाग में एक दूसरा प्रश्न भी कौंध गया । अगर मन्टू को भी मालूम हो गया कि तुम्हें किस कारण ससुराल वाले ने धक्के दे कर निकाल दिया था, तो क्या उसी डर से मन्टू को भी तुम्हें... और इतना सोचते ही सुरेखा की आँखों के सामने इलेक्ट्रोन की विद्युतीय रेखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी हो कर ऊपर-नीचे होने लगी । कमरे का फैला प्रकाश धीरे-धीरे धुँधला पड़ता दिखाई देने लगा । उसे लगा कि आगे की भी चीजें वह नहीं देख पाएगी । कि उसने मन्टू को अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर निहारने की कोशिश की । उसे लगा कि वह भी उन विद्युतीय रेखाओं के पीछे आ जाने के कारण ओझल-ओझल-सा होने लग गया था.....

वह घबराहट में अपना सर पकड़कर बैठ गई । लेकिन शीघ्र ही उसे लगने लगा, जैसे उसका दिमाग अन्दर-ही-अन्दर काफी फूल गया है । उसका कपाल भी काफी बाहर निकल पड़ा है । भयभीत सुरेखा अपनी हथेलियों से उसे जोर-जोर से दबाने लगती है और चाहती है कि दौड़ कर पड़ोस के डाक्टर भाटिया से मिले... कि उसे लगता है कि उसके दोनों पैरों के पंजे और एड़ियों के बीच के भाग धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे हैं, इतने ऊपर कि उसके पैर जैसे पुल बन गए हों और सुरेखा स्वयं पुल के एक किनारे खड़े लम्बे वृक्ष की तना की तरह हो गई थी और यह सब बिगड़ने, बदलने के बाद मन्टू ही कहाँ पूर्व की तरह रह गया था । वह न जाने कब इलेक्ट्रोन की लम्बी तीव्र धारा बना पैरों के पुल के नीचे से बहने लगा था । सुरेखा को लगा जैसे वह हरहरा कर उस करेन्ट में जड़ समेत उखड़ कर बहने ही वाली है,

कि वह इसी भय से सहसा ही चीख उठी थी—'मन्टू बचाओ ।'

सुरेखा की अप्रत्याशित चीख सुनकर मन्टू भी घबरा कर उठ बैठा और सुरेखा को झकझोरते हुए पूछा—'क्या हुआ सुरेखा ?'

सुरेखा की आँखें खुल गई थीं, लेकिन उसकी देह की कँपकँपी पहली जैसी ही स्थिर थी । मन्टू ने अपने प्रश्न को पुनः दुहराया था, उसकी दोनों हथेलियों को अपनी हथेलियों में बड़े प्यार से लेते हुए । उसके स्पर्श और स्वर में एक गहरी आत्मीयता का अनुभव कर सुरेखा ने मन्टू की ओर देखा था और फिर जाने-पहचाने उसी भय के स्वर में पूछ बैठी थी—'मन्टू , तुम भी तो किसी कारण से मुझे छोड़ नहीं दोगे, यही कि मैं.....

सुनकर मन्टू ठठा-ठठा कर हँसने लगा था । हँसते-हँसते ही उसने कहा—'यह क्या कह रही हो सुरेखा ! अब तुम नौकरी करती महिला हो, एक विभाग की ऑफिसर भी, सिर्फ एक पत्नी ही नहीं । डरना तो चाहिए मुझे कि न जाने कब तुम मेरी छुट्टी कर दो.....'

यह सब कहते-कहते वह और भी जोर-जोर से ठठा कर हँस पड़ा । मन्टू की बातें सुनकर सुरेखा लाज से दुहरी हो गई और मन्टू की हँसी देर तक बिसमिल्लाह खान की शहनाई और पण्डित हरि प्रसाद चौरसिया की मुरली की मिली-जुली आवाजों की तरह एक साथ गूँजती रही, कभी हवा के कारण हल्की रूई की तरह उसके कानों के बगल से ऊपर उठती हुई और कभी वर्षा की भारी बूँदों की-सी उसके कानों के पास गिरती हुई । सुरेखा ने देखा कि मन्टू की हँसी बिजली की असंख्य छोटे-छोटे गुलाबी, सफेद और फिरोजी फूलों में बदल-बदल कर उसकी आँखों की पुतलियों में एक साथ उतर जाने की कोशिश में टकरा-टकरा कर आँखों के सामने इधर-उधर नीचे हो रहे हैं और एक-एक कर उसके बदन में समाते जा रहे हैं । सुरेखा ने अपने बदन से ताजे शिरीष गंध को उठते महसूस किया और वह मदोन्मत्त हो उठी, मन्टू के कंधे पर अपने अस्त-व्यस्त वाले सर को रख कर ।

❐❐

डॉ. अमरेन्द्र : संक्षिप्त जीवन-परिचय

पूरा नाम : डॉ. अमरेन्द्र कुमार सिन्हा
जन्म : ५ जनवरी १९४९
जन्मस्थान : ग्राम रूपसा । थाना, रजौन । जिला, भागलपुर (अब बांका), बिहार
शिक्षा : बी. ए. (प्रतिष्ठा), एम. ए. (हिन्दी), पी.एच. डी.

प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें	प्रकाशक
१. सूरज के पार (गजलें)	सहयोगी प्रकाशन, भागलपुर/१९८१
२. जनतंत्र का 'विक्रमशिला' (कविताएं)	समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९८१
३. पीर का पर्वत पुकारे (गजलें)	समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९८४
४. देहरी पर दीया (नवगीत)	समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९८६
५. मन गोकुल का गाँव (गीत)	मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००३
६. द्वार के पार (गजलें)	मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००३
७. काव्य और कसौटी (आलोचना)	एच० के० प्रकाशन, दिल्ली/२००४
८. भाषा और साहित्य (आलोचना)	मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००५
९. काँटे कुछ कचनार (कविता-संग्रह)	मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००५
१०. शब्द साधक और साहित्य (आलोचनात्मक निबंध)	अंगिका फॉउन्डेशन, दिल्ली/२००८
११. संस्कृति और साहित्य (आलोचनात्मक निबंध)	अंगिका फॉउन्डेशन, दिल्ली/२००८
१२. सलेश भगत (उपन्यास)	अंगिका संसद, भागलपुर/२००९
१३. अमृतदेश अंगप्रदेश (रेडियो नाटक)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१२
१४. दीपक मेघ हिण्डोल (गीत-संग्रह)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१२
१५. आलाप संलाप (हिन्दी प्रबन्ध)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१३
१६. गेना (हिन्दी प्रबन्ध काव्य)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१३
१७. वेणुवंशी (लघु प्रबन्ध काव्य)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१३
१८. साधो सुर का देश (कविता-संग्रह)	समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१५

१९. सिंहासन का संन्यास (रेडियो नाटक) समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१६
२०. एक सावित्री की मौत (हिन्दी कहानियाँ) समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१७

प्रकाशित अंगिका पुस्तकें — प्रकाशक

२१. करिया झुम्मर खेलै छी (कविताएं) शेखर प्रकाशन, पटना/१९८२
२२. गेना (प्रबन्ध-काव्य) समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९८९
२३. अंगदेव (प्रबन्ध-काव्य) समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९९४
२४. ढोल बजै छै ढम्मक ढम (बाल-गीत) समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९९४
२५. पंचगव्य (एकांकी-संग्रह), अंगिका संसद, भागलपुर/१९९७
२६. जटायु (उपन्यास) 'नई बात' में धारावाहिक प्रकाशित मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/१९९७
२७. अंगिका छन्द-छौनी (छन्द-विवेचन) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९७
२८. छन्द-मौनी (अंगिका छन्द-विवेचन) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९७
२९. गजल रो॑ पिंगल (फारसी-संस्कृत-हिन्दी छन्द-विवेचन) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९७
३०. अंगिका साहित्य रो॑ इतिहास (गद्य-भाग) हिन्दी अकादमी, हैदराबाद/१९९८
३१. दुपल्लो (प्रेमचन्द की कहानियों का नाट्य रूपान्तर) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९९
३२. बुतरू के तुतरू (बाल-गीत) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९९
३३. रेत रो॑ राग (गजलें) अंगिका संसद, भागलपुर/१९९९
३४. ऋतुरंग (गीत-संकलन) अंगिका संसद, भागलपुर/२०००
३५. कुइयाँ में काँटो॑ (नवगीत, पद, दोहे, सोनेट) अंगिका संसद, भागलपुर/२००४
३६. बाजै बीन बजावै तीन (बालगीत) अंगिका संसद, भागलपुर/२००५
३७. एक छड़ी पर अंडा नाचै (बुझौव्वल) अंगिका संसद, भागलपुर/२००५
३८. बण्टा (उपन्यास) अंगिका संसद, भागलपुर/२००९
३९. घटोत्कच (बाल खण्ड काव्य) 'नई बात'(१३ नवम्बर २०११) में प्रकाशित
४०. शबरी (अंगिका खण्डकाव्य) स. स. अं. वि. सं. भागलपुर/२०१३

सम्पादित हिन्दी पुस्तकें — प्रकाशक

४१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियाँ समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९९२
४२. शब्द बनते बिम्ब (कविताएं) कामायनी, भागलपुर/१९९८
४३. शताब्दी के साहित्यकार : कमला प्रसाद बेखबर राठौर प्रकाशन, कोलकाता/१९९९
४४. ग्यानूड़ी (सदाशिव सुगन्ध की प्रतिनिधि कहानियाँ) हंस पब्लिकेशन, भागलपुर/२०००
४५. सुरंग में सूरज (हिन्दी कहानियाँ) प्रथम प्रकाशन गृह, दिल्ली/२००२
४६. गुरेश मोहन घोष सरल : व्यक्तित्व और कृतित्व प्रथम प्रकाशन गृह, दिल्ली/२००२
४७. नीली झील की आँखें (हिन्दी कहानियाँ) मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००३
४८. पुल (जसवन्त सिंह विरदी की कहानियाँ) कामायनी, भागलपुर/२००३
४९. तूफान में फूल (जसवन्त सिंह विरदी की कहानियाँ) एच. के. प्रकाशन/२००३
५०. माँ को लिखा पत्र (जसवन्त सिंह विरदी की कहानियाँ) मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००४
५१. सात सुरों का देश (सं. काव्य संग्रह) समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१३

५२. काव्याभा (आभा पूर्वे के काव्यों का संकलन) समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१४
५३. डॉ. मिथिलेश दीक्षित का हाइकु-साहित्यःदिशा और दृष्टि वी.पी.पब्लिशर्स, कानपुर/२०१४
५४. चन्दन-वट (चन्द्रप्रकाश 'जगप्रिय व्यक्तित्व/साहित्य) समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१६

सम्पादित अंगिका पुस्तकें — प्रकाशक

५५. गीत-गंगा — समय साहित्य सम्मेलन, बाँका/१९९४
५६. सात समुन्दर साथ (कविताएं) — अंगिका संसद, भागलपुर/१९९५
५७. अंगिका कहानी — अंगिका संसद, भागलपुर/१९९७
५८. आठ समुन्दर आँख (कविताएँ) — अंगिका संसद, भागलपुर/१९९८

अनुवाद साहित्य — प्रकाशक

५९. साँप (अंगिका नाटक का हिन्दी रूपान्तर) — समय साहित्य सम्मेलन, बाँका
६०. मन रोॅ मनका (अंगिका कविताओं का हिन्दी रूपांतर) /२००२
६१. कोशी के तीरेॅ-तीरेॅ — मनप्रीत प्रकाशन, दिल्ली/२००५
६२. फैसल रोॅ जासूसी (बाल उपन्यास) उर्दू से अंगिका — एजुक्रेशनल पब्लिक्रेशन्स, दिल्ली/२००९
६३. शिकार आरो शिकारी (उर्दू से अंगिका) — एजुक्रेशनल पब्लिक्रेशन्स, दिल्ली/२००९
६४. जंगल रोॅ पहचान (बाल उपन्यास) उर्दू से अंगिका — निराली दुनिया पब्लि., दिल्ली/२००९
६५. जंगल में सूर्यास्त (डॉ. रामनिवास मानव की हिन्दी कविताओं का अंगिका अनुवाद) — अमित प्रकाशन, गाजियाबाद/२००९
६६. मधुशाला (हरिवंश राय बच्चन-कृत काव्य का अंगिका अनुवाद) — समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/२०१५
६७. नदी-नदी रौद (डॉ. शिवनारायण की हिन्दी कविताओं का अंगिका अनुवाद) — आकाशदीप प्रकाशन, मुंबई/२०१६

यंत्रस्थ कृतियाँ

६८. अंगिका लोकसाहित्य

दर्जनों महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में कविताएँ/कहानियाँ भी प्रकाशित ।

पत्र-पत्रिकाएं, जिनमें रचनाएं प्रकाशित हुई हैं :

चन्द्रकिरण, सृजन, माधुरी, आजकल, वनफूल, प्रगतिशील समाज, आरोह, मेरी सहेली, सूरज, जागृति, शैली, सरोकार, संकल्प-रथ, बालहंस, बच्चों का देश, नवनीत, कादम्बिनी, अग्नि-पुष्प, साहित्य अमृत, देवघर विद्यापीठ पत्रिका, गणगोर राजहंस, साहित्य सरोवर, आकण्ठ, कंचनलता, साहित्य भारती, मंगल ज्योति, छपते-छपते, (विशेषांक), संदर्भ, संकल्य, उलूपी, हिमालिनी, नई गजल, युगीन, विवरण पत्रिका, उमंग, संग्रथन, सरोपमा, मयूराक्षी, कोहसार (उर्दू), गुलबन (उर्दू), लूर, लोकगंगा, देवघर विद्यापीठ पत्रिका, नई धारा, प्रगति वार्ता, अभिनव इमरोज,

समय, किस्सा, संभाव्य, परिषद् पत्रिका, समाख्या, नव भारत टाइम्स, पांचजन्य, विश्वमित्र, नई बात, आज, जनसत्ता, हिंदुस्तान, पाटलीपुत्र, अंगसत्ता, प्रभात खबर, समरक्षेत्र, नव विहार, आवाज, नवां जमाना (पंजाबी), दैनिक जागरण में कहानियां, फीचर, कविताएं प्रकाशित ।

प्रसारित नाट्य साहित्य	प्रसारण वर्ष
१. अंगिका अंग लगैवै (अंगिका रूपक)	१९८१
२. शैलेष भगत (नाटक)	१ सितम्बर १९८२
३. मधुसूदन का मन्दार (रूपक)	२४ फरवरी १९८४
४. वापसी (नाटक)	३१ अगस्त १९८४
५. घर-बाहर (चार हास्य नाटिकाएँ)	९/१६/२३/३० मार्च १९८६
६. आषाढ़, धरती की पूजा (रूपक)	१० जून १९८७
७. बीच वैतरणी में	१७ अक्टूबर १९८७
८. अन्धेरी घाटी की सूरजमुखी	५ जून १९८८
९. कथाकार सम्राट मुंशी प्रेमचन्द (रूपक)	३१ जुलाई १९८८
१०. सरदार लहना सिंह (नाट्य रूपान्तर)	७ अगस्त १९८९
११. यशोधरा (गुप्त के काव्य 'यशोधरा' का नाट्य रूपान्तर)	३० मार्च १९९०
१२. महामानव मालवीयजी महाराज (रूपक)	११ मई १९९०
१३. नारी तुम केवल श्रद्धा हो ('कामायनी' का नाट्य रूपान्तर)	१८ नवम्बर १९९०
१४. पूस की रात (प्रेमचन्द की कहानी का अंगिका नाट्य रूपान्तर)	फरवरी १९९२
१५. सम्राट शहीद महेन्द्र गोप (रूपक)	१४ मई १९९२
१६. आकाशदीप (प्रसाद की कहानी का नाट्य रूपान्तर)	१ मार्च १९९५
१७. सत्तावन का शेर (नाटक)	२ अगस्त १९९६
१८. उसका महाभारत (हास्य नाटिका)	२९ अप्रैल १९९७
१९. उगते सूरज का सफर (रूपक)	२१ नवम्बर १९९९
२०. रास्ते और भी हैं (नाटिका)	फरवरी २०००
२१. मौनसून मेघ दे	३० जुलाई २०००
२२. गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी (व्यंग्य.नाटक)	३० जनवरी २००१
२३. या नारी सर्वभूतेषु (रूपक)	२९ अक्टूबर २००२
२४. मैं मोक्षद मंदार (रूपक)	३१ जनवरी २००३
२५. भवप्रीतानन्द ओझा (रूपक)	२३ मार्च २००४
२६. नरसिंह बाबू (अंगिका नाटक)	१० अप्रैल २००४
२७. रूद्रावतार (भाषान्तरित गीति नाट्य)	१८ जून २००५
२८. बुद्धं शरणं गच्छामि (रूपक)	१३ मई २००६
२९. सिंहासन का सन्यास (नाटक)	१ अगस्त २००७
३०. अंग देश का अमृत मंथन (तेरह खण्डों का फीचर)	१ फरवरी २०११ से २४ मई २०११
३१. फुलवा कटोरवा (नाटक)	२४ अप्रैल २०१२

३२. दरसो, परसो, घन बरसो (रूपक) १० जुलाई २०१२
३३. सुरंग का सूरज (नाटक) १० अगस्त २०१२
३४. अमृतदेश : अंगप्रदेश (नाट्य रूपक) राष्ट्रीय प्रसारण कार्यक्रम २७ अक्तूबर २०१२
३५. ॐ श्री चित्रगुप्ताय नमः (नाटक) १३ नवम्बर २०१२

डॉ. अमरेन्द्र पर स्वीकृत शोध-प्रारूप

१. ति. माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग द्वारा पी. एच्-डी. हेतु 'डॉ. अमरेन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' विषय पर शोध-प्रारूप स्वीकृत/शोधार्थी—श्वेता रानी
२. सिदो-कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड) के एस. बी. एस. एस. पी. एस. जनजातिय महाविद्यालय पथरगामा गोड्डा द्वारा पी. एच्-डी. हेतु 'डॉ. अमरेन्द्र के काव्य में समकालीन यथार्थ' विषय पर शोध-प्रारूप स्वीकृत/शोधार्थी—ब्रह्मदेव कुमार
३. द्रविड़ियन विश्वविद्यालय, कुप्पम (आं. प्र.) के पी. एच्-डी. हेतु 'डॉ. अमरेन्द्र का हिन्दी-अंगिका साहित्य : परिचय एवं मूल्यांकन' विषय पर शोध-प्रारूप स्वीकृत/शोधार्थी—सुनीता नैन
४. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा, चेननई के पी. एच्-डी. हेतु 'डॉ. अमरेन्द्र के काव्य की मीमांसा' विषय पर शोध-प्रारूप स्वीकृत/शोधार्थी—जनार्दन यादव

सम्पर्क : सम्पादक/वैखरी, लाल खां दरगाह लेन, सराय, भागलपुर ८१२००२ (बिहार)
दूरभाष : ०९९३९४५१३२३ (मो.)